

आगम त्हित्य-माला

ग्रन्थ : ७

आचारार्ज के सूक्त

जलुवावक :

श्रीचन्द्र रामपुरिया, बी० काम०, वी० पल०



तेरापंथ द्विसताब्दी समारोह के अमिनन्दन में प्रकाशित

प्रकाशक

जैन

तेरापची महासभा

३ पोचणीव जय स्ट्रीट

कलकत्ता

•

प्रथमावृत्ति

वर्ष १९९०

आषाढ २०१०

•

प्रति सख्या

११ •

•

द्विती सख्या

१२ •

•

तृतीया

जैन सभे

•

मुद्रक

श्रीसुभाष श्रेष्ठ

कलकत्ता—४

प्रकाशकीय

आचाराङ्ग का प्रथम श्रुतस्कंध भाष, भाषा और
शैली की दृष्टि से अत्रों में प्राचीनतम माना गया है ।
इस पुस्तक में इस श्रुतस्कंध के मूलों का चयन है और साथ
ही में उनका हिन्दी अनुवाद । आगम साहित्य-माला का
यह प्रथम पुण्य है जिसे महासभा द्विशताब्दी समारोह के
अभिनन्दन में प्रकाशित कर रही है । ये एक महावीर की
मौलिक वाणी का मार्मिक सन्देश पाठकों को देने ।

नैराश्रम द्विशताब्दी व्यवस्था उपनिमिति श्रीचन्द्र रामपुरिषा

३, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट,

व्यवस्थापक,

कलकत्ता—१

साहित्य-विभाग

२४ मूल, १९६०

भूमिका

१ : आचाराङ्ग का स्थान

जैन-ध्रागमो का नाम गणिपिटक रहा । गणिपिटक में बारह प्रज्ञो की गणना होती है । इन प्रज्ञो में आचाराङ्ग का स्थान प्रथम है* ।

बारह प्रज्ञो में किसका क्या स्थान है यह बताने के लिए धृत पुण्य की कल्पना मिलती है जिसमें 'आचाराङ्ग' को राहिने चरण और 'सूयकृतान' का नाथे चरण के रूप में निर्दिष्ट किया है* । शरीर में

१—समवायाङ्ग सू० १३६ : इमे दुवालसगे गणिपिङ्गे पन्नत्तो,
तं जहा आयरि"दिट्ठिवाए

२—(क) नवीसूत्र ४३ की चूर्णि पत्र ४७ :

पावस्युग जंघोरु गातदुगद्धं तु दोय वाहू य ।

गीवा सिर च पुरिसो वारसवयोसुतविसिट्ठो ॥

(स) समवायाङ्ग १३६ की टीका : तत्र धृतपरम-
पुण्यस्य अङ्गानीवाङ्गानि द्वादशाङ्गानि आचारादीनि
यस्मिस्तद् द्वादशाङ्गम्

परो का स्थान जान्य है। आचारान्न और दून-कर्म के दून गुण के दो पर हैं जसाद सारा गुण इन्हें के आधार पर कहा है। अपने बिना अन्य मङ्गल नष्ट हैं। यह ब्रह्मा जी आचारान्न के महत्व को प्रदर्शित करती है।

निधुक्ति के अनुसार दीन-अर्थात् के समय दीनपर सब प्रथम आचारान्न का उल्लेख करते हैं और अपने बाद अन्य मङ्गल का^१। यमवर इस उल्लेख के प्रथम आचारान्न को सुलभत करते हैं और फिर अन्य मङ्गल को। दूसरे नष्ट के अनुसार दीनकर सब प्रथम दूधों का उल्लेख को है पर दून-कर्म सब प्रथम आचारान्न का ही होता है^२। तीसरे नष्ट के अनुसार सब प्रथम जलेश और दून रक्ता

१—(क) भा० नि० ८

सम्पत्ति आचारो विष्णुस्त कस्तये पञ्चमया।

सेवाद् मवाद एकादश भागुल्लेखी॥

(ख) भा० पू० पत्र ३

सुध विष्णुगया नि आचारस्त मत्त पञ्चमयास्तति एतो सेतगाम
एकदशान्न मगान ताए नैव शीतारिण मन्त्ररावि सुध दूधति

२—नदी पूर्णि पत्र १९ नदी टीका पत्र १०० नदी कृति

पत्र २४०

पूर्वों की होती है पर स्वापना सर्व प्रथम आचाराङ्ग की होती है^१ । इसमें दो मत नहीं कि आचाराङ्ग को किमी-न-किमी दृष्टि में भङ्गों में प्रमुख स्थान प्राप्त है ।

निर्युक्तिकार ने आचाराङ्ग की महिमा उसे 'भङ्गों में प्रथम', 'प्रथम का सार' कह कर की है और कहा है कि हमने मोक्ष का उपाय बतलाया गया है^२ । साथ ही उसे 'वेद' शब्द में भी सम्बोधित किया है^३ ।

भाग्यो में अनुमान के दो भेद मिलते हैं—(१) भङ्गप्रविष्ट और (२) भङ्गबाह्य^४ ।

१—समवायाङ्ग सूत्र १३६ की टीका

२—आ० नि० ६ :

आत्मायी अगाण अग दुवास्सिग्हपि ।

इत्थं य मोक्खोवाओ एस्स य सारो पक्कणस्स ॥

३—आ० नि० ११ :

णव्वमन्वेरमइओ अट्टारसपयसइस्सिओ वेओ ।

४—नदीसूत्र सू० ४४ : तं समासओ दुविह पण्णात्त, त जहा अंगपविट्ठं अंगवाहिरं च

मनसरो के प्रत्यक्ष करने पर तीव्रतर उपाद-अथ धीमे रूप
 विपरीत का व्यवहार करते हैं। जब पर से उत्पन्न बात को समग्रविष्ट
 करते हैं। बिना प्रत्यक्ष व्यवस्थापन के लिए अल्पविष्ट धूम धूम
 बाह्य रहता है। अज्ञातवादी और समग्रविष्ट की दूसरी परिभाषा
 इस प्रकार है। जब तीव्रतर के तीव्र से व्यवहार उत्पन्न होने वाला
 प्रतीति निवृत्त बात समग्रविष्ट और अल्पविष्ट बात—विपरीत तीव्रतर व
 तीव्र में होने वाला और विपरीत के तीव्र में नहीं होने वाला व्यवहार
 कहलाता है^१। शाभाराज समग्रविष्ट बात की बोधि के
 प्रमाण है^२।

२. सुलक्ष्णों की अपेक्षाकृत प्राचीनता

शाभाराज को अलक्ष्णों से विभक्त है। पहले अलक्ष्ण व न
 व्यवहार रहे। जब बात है^३। दूसरे स्वर व वाच हुआ रही। व

१—विपरीतव्यवहारमात्रं सुलक्ष्णं तत्र रस्य

२—मदीयसूत्र सू० ४५ से कि व समग्रविष्ट समग्रविष्ट
 समग्रविष्ट व अल्पविष्ट—शाभाराज १ दिष्टिमात्रो १२

३—नियुक्तिवार मात्राज के समय तक भी अध्ययन रहे।
 शीलाभाषाव गद्यविद्या नामक अध्ययन को सूत्र बताया
 है। नियुक्ति के मत से यह अध्ययन ७ वां था। दूसरे
 मत के अनुसार ८ वां और समवायाज सू० ६ के मत
 से ६ वां।

चार हैं^१ ।

दूसरे धृतस्कन्ध में कुल १६ अक्षयन हैं । इन अक्षयनों में से प्रत्येक को 'आचार्य' कहा गया है । आचाराग्रो का समूह होने से दूसरे धृतस्कन्ध का नाम 'आचाराग्र' मिलता है ।

प्रथम धृतस्कन्ध के नौ अक्षयनों में से प्रत्येक का नाम ब्रह्मचर्य है । ब्रह्मचर्य अक्षयनों का समूह होने से प्रथम धृतस्कन्ध का नाम ब्रह्मचर्य मिलता है ।

प्राचीन ज्ञेयों से पता चलता है कि मूल आचाराग्र प्रथम धृतस्कन्ध प्रमाण था । द्वितीय धृतस्कन्ध बाद में उसमें जुड़ा^२ । नियुक्तिकार कहते हैं—'वेद्य—आचार—ब्रह्मचर्यनामक नौ अक्षय-नामक है जिसमें अठारह हजार पद हैं । वह बाद में पंच भूला

१—नियुक्तिकार भद्रबाहु के समय पांचवीं चूला रही । उसके बाद लुप्त हो गई । इस चूला के दो नाम मिलते हैं— (१) निक्षीप और (२) । आचार प्रकल्प (भा० नि० २६७ टीका)

२—भा० नि० १२ :

नामारगगान्त्यो वमचेरेसु सो समोयरइ ।

सोडवि म सत्थपरिण्णाए पिड्डिअत्थो समोयरइ ॥

महिा हुवा मिलने क-परिमाण में वह 'बहु धीर' 'बहुतर हुवा' ।
 वह धीर 'बहुतर' शब्द पर टीका करते हुए सीताहू मिलने है
 'आर पुनिकात्मक यत्न' के अन्तरे के अन्तरे परिमाण बहु धीर
 नाकनी पूजा निधीय के अन्तरे के अन्तरे परिमाण बहुतर हुवा' ।
 निर्दुष्टिकार सम्पन्न मिली है 'अन्तरे-परिमाण' धारि नी सम्पन्न
 है अन्तरे ही भाषार (यज्ञ) है । केव भाषाराष्ट्र है' । जो बात

१—भा० नि० ११

अन्तरेपरमाणो बहुतरपरमाणो वैकी ।

हन्त य सपन्नपूजो बहुतरपरमाणो यमगेय ॥

२—भा० नि० ११ की टीका

अन्तरेपरमाणो नमस्तुभ्योऽभिवासात्परमाणोऽप्य
 परमाणोऽप्यसत्परमाणो वैकी भाषार इति सपन्नपूजय
 मन्ति बहुतरपरमाणो द्वितीय परमाणोऽप्यसत्परमाणो
 निधीयपूजय मन्तिपरमाणोऽप्यसत्परमाणो यमगेय—
 परमाणोऽप्यसत्परमाणो

३—भा० नि० ३१ ३२

सत्परमाणो' सौमित्रिको' सीताहूनिम्न' सम्पन्न' ।

अन्तरेपरमाणो' युव' अन्तरेपरमाणो' य ॥

अन्तरेपरमाणो' अन्तरेपरमाणो' य नमस्तुभ्यो ।

अन्तरेपरमाणो भाषारगामि सौमित्रि ॥

साधार में कही छूट गयी अथवा जिनका विस्तार करना जरूरी था उनका समावेश इस 'अर्थ' भाग में है, यह यह साधारण है। निर्वृत्तिकार ने इस विषय पर पुनः हासते हुए लिखा है "साधार (अर्थ) प्रथम अतुल्यत्व के ती प्रथम अतुल्यत्व ही है। दूसरे अतुल्यत्व के अध्ययन ही विषयों के हित के लिए, अर्थ का अधिक विस्तार करने के लिए जान बूझ स्थिति में पड़े। यह साधार के अध्ययनों से प्रमि-भक्त किये हैं।" टीकाकार ने यह दिखाया है कि प्रथम अतुल्यत्व के ती अध्ययन के किंतु भाग या भाग्य पर से दूसरे अतुल्यत्व के अध्ययन का विस्तार किया गया है। किंतु चूना का विषय

१—आ० टीका पत्र २८६

उपकारात्तु यत्पूर्वोक्तस्य विस्तरतोऽनुसृत्य च प्रति-
पादनादुपकारे वर्तते तद्—यथा "काव्यिकस्य चूरे,
अयमेव वा अतुल्यत्व आचारस्य।

२—आ० नि० २८७।

बेरेहिऽनुसृत्य सीतहिय होच पागवर्थ्य च।

आमारामो गच्छो आचारगेसु पविमत्तो ॥

टीका—स्थितिः अनुसृत्यः कर्तृत्वपूर्वविदिमनिर्युदानीति।

कहाँ से लिया गया है कला निवार निवृत्ति में भी है। भाषा
राज्य ब्रूमि और टीका य प्रथम अक्षरों के अन्तिम भागों की
अन्तिम ब्रूमि वाला है। कला भी यह निरूपित होता है कि ब्रूमि
भाषाओं की अन्तिम में अन्तिम था।

केनेडी ने लिखा है : 'जबकि कुलकण्ट आवागमन का प्राचीनतम नाम है, तबका जहाँ भूमि प्राचीन आवागमन का है, तबका प्राचीनतम नाम है, तबका जहाँ भूमि प्राचीन आवागमन का है, तबका प्राचीनतम नाम है' । विभिन्न विषयों

१-४० मि० रक० र११

[illegible]

3 S B E (Vol. XXII, Introduction p XLVII) The first book, then, is the oldest part of the Akarṅga Sūtra it is probably the old Akarṅga Sūtra itself to which other treatises have been added.

है "शास्त्राचार्य का द्वितीय श्रुतस्फुट बहुत बाद का है। [॥ केवल इसने मात्र से जाना जा सकता है कि दूसरे श्रुतस्फुट के अध्ययनो को 'बूला' कहा गया है। बूला अर्थात् परिशिष्ट।"

द्वितीय श्रुतस्फुट प्रथम श्रुतस्फुट की अपेक्षा बाद का है परन्तु फिर भी वह बहुत प्राचीन है और नियुक्तिकार महाबाहु के समय में वह शास्त्राचार्य में समाविष्ट था इसमें कोई संदेह नहीं।

३ : प्रतिपाद्य विषय :

प्रथम बूला में ७ अध्ययन हैं—जिनमें क्रमशः विवैषया, जव्या—वसति, द्यौः—विहार, माया, वस्त्रेयणा, पार्ष्णयणा, भवग्रह-प्रतिमा के नियम हैं। इस बूला का नाम नहीं मिलता। दूसरी बूला में भी ७ अध्ययन हैं। जिनमें क्रमशः स्थान, निपीयिका, उच्चार-प्रकाशण, कण्ठ, रूप, परकिर्या, ग्रन्थोन्मक्तिर विषयक नियम हैं। इन बूला का नाम सत्तिकमा है। तीसरी बूला में एक ही अध्ययन है। इसमें भगवान् महावीर का जीवन-चरित्र तथा पाँच महाव्रत और उनकी २५ वाक्यांशों का इक्ष्मव्राही वर्णन है। यह

1. A History of Indian literature (Vol. II, p 437) : Section II of the Ayaranga is a much later work, as can be seen by the mere fact of the sub-divisions being described as Culas, i. e. appendices.

आत्म-निग्रह । प्रथम अतुल्यत्व में मुनियों के यम-नियमों का चलेख नहीं है पर वही व्यापक धर्म-भावना और जीवन-ध्यानों समग्र समय के सूत्र हैं । इस अध्ययन में यन्त्रीर उत्तर्धितन एवं साधक मुनि की साधना के मौलिक सूत्र हैं ।

प्रथम अतुल्यत्व के अध्ययनों का विषय संक्षेप में इस प्रकार है

१—राज्यपट्टि। इसमें जीवों के प्रति समय का उपदेश है । धर्म धर्म में छ प्रकार के जीव माने गये हैं । इन जीवों की हिता के परिहार का उपदेश इस अध्ययन में है ।

२—जीवविषय। इस अध्ययन में जावलोक के विषय की बात आई है । जिससे जीव—धर्म—का वृत्त होता है उन कर्माकारि पर विषय का उपदेश इस अध्ययन में है ।

३—जीवोत्थीय। इसमें सुख-दुःख में चित्तिका भाव रखने का उपदेश है ।

४—सम्यक्त्व। इसमें सत्य में हठ बढ़ा रखने का उपदेश है ।

५—जीवधार। इसमें जीव में सार क्या है इसका वर्णन है । इस अध्ययन का नाम जावति^१ भी मिलता है ।

६—दुःख। इसमें निर्मलता का उपदेश है ।

१—समवायाङ्ग सू० २

७—महापट्टा^१ इसके मोक्षजन्य परिणत उत्पन्न को गहन करने का करने है। यह सम्पन्न विच्छिन्न है। इनके विषय का प्रतियोग्य निमित्तकार के रूप वास्तव के विषय है—जोह सम्पत्ता वरीकृत्यन्ता^२।

८—विमोक्ष^३ इनके निर्वाण—कथिना—की विधि है।

९—कल्याणवृत्त इसके कल्याण आशीर के योग के बाध के बाध कर आशीर की कल्याण वृत्त का वपन है।

कथिना की सम्पत्तियों के विषय की कथा करने वाली विधि नि की वाचार्थ इस प्रकार है—

विमोक्षयो^४ न सोमो न्म कथ्यते न्म न त कथिनाम्^५।

सुखकथिनाम्^६ कथ्यते^७ सोमो^८ न ॥ ३३ ॥

विमोक्षयो^९ न न्म मोक्षकथना वरीकृत्यन्ता^{१०}।

नि-वाच^{११} कथ्यते न्म न विमोक्ष एवमि^{१२} ॥ ३४ ॥

७ कथिनाम् जीर आचार्य

श्री० कथिनाम् जीर आचार्य विमोक्ष है

विमोक्ष जीर आचार्य कथिनाम् के सुखिनीकी भण्डार है नर माया विमोक्ष विमोक्ष कथिनाम् के विमोक्ष है। कथिनाम् के आचार्य

१—इसके रूप के विषय में केवल भूमि ५० ४ या ० टी० ३

२—इसका नाम विमोक्ष (विमोक्षक) की विमोक्ष है।

सम० सु० ३

चिन्तन उपलब्ध अवश्य होता है परन्तु उसमें यह नहीं बताया गया है कि आत्म चिन्तन-मनन एवं साधना का मार्ग क्या है ? साधना के पथिक की दैनिक जीवनचर्या कौसी होनी चाहिए या यों कहिए मायक कैसे चले, कैसे बैठे, कैसे साये, कैसे पिए तथा किम प्रकार तन, मन और वचन की प्रवृत्ति को साम्यात्मिक भावना की ओर मोड़े, इनका कोई राजमार्ग नहीं बताया गया है ।

“कम तरह उपनिषदों में ब्रह्मवार्ता तो है, पर ब्रह्मचर्य का पना नहीं समझा । चिन्तन मनन-करने का उपदेश तो दिया गया है, पर उसके लिए मायक के जीवन में किस तरह की योग्यता, गुण निष्पन्नता होनी चाहिए तथा कितना समय होना चाहिए, उमङ्ग स्पष्ट विधि-विधान प्राचीन उपनिषदों में पश्चिञ्चिन नहीं होता । न समय का विधि-विधान है, न स्थान-सुख का ही ।

“यदि साम्यात्मिक चिन्तन-मनन एक मयवी जीवन का माता-त्कार करना हो तो हमारे समस्त समय वम्पग का यह प्राचीन सर्वोत्कृष्ट काव्य साधारण मूत्र है ।”

१ जीवन-साहित्य का इतिहास : आचारान्न मूत्र ('अपण' अर्धे
 E अङ्क १ पृ० ८)

और कृष्ण अश्वत्थ^३ ने यह मैली पर्णता को पड़ुची हुई दिखाती है।
 तब कि गद्यमयी मैली अनेयाहुत आवुनिक है। हमारे, जो पद्य
 तथा गद्यान्तर्गत भाषित होते हैं वे वेष्कासीन और बड़े हमारे
 पुराने जिपुम्^४, धनुपुम्^५ जैसे कवियों की कवियाँ हैं। यह भी
 पौषी की प्राचीनता की सूचना करता है^६।

"भाषा की दृष्टि से तपासने पर . . . ब्रह्म आगम में श्री
 आचारण की भाषा प्राचीनतम है।

"श्रीगीता को पद्यात्मक उपनिषद् के काव्य में रखा जाता है,
 और श्री आचारण सूत्र का श्री पौता के साथ इतना अधिक साम्य
 देखते हुए तथा मैत्री में उसका साम्य बाह्य उपनिषद् के साथ
 देखते हुए श्री आचारण सूत्र को ब्रह्म ग्रन्थों में सबसे पुराना मानने
 में और उसे ब्रह्म से ब्रह्म सगमन ई० पू० तीसरे शताब्दी में

३—अथर्व वेद सारा कृष्णअश्वत्थ इस मैली में है।

४-५—अ० २ उ० ४ सूत्र १०८-११२ के टुकड़े ऐसे ही हैं।

६—प्रो० शूक्ति ने ऐसे जगों का उद्धार करने तथा उनके मूल
 की शोध करने का सूत्र प्रयत्न किया है और उसमें उनको
 खूब ही स मिली है। देखिए Worte Maha-
 viras का उपोद्घात।

रखने में शक्ति नहीं सम्भूत होती : यह जगत् सभी सब सभी पुत्र का भी हो सकता है ।

इस पुस्तक में आचारारङ्ग के अथवा आत्मरङ्ग के सूक्तों का संग्रह है । साथ में उनका हिन्दी अनुवाद भी दिया गया है । हिन्दी अनुवाद में कुछ जगह की वही पर पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग द्वारा स्पष्ट करने का प्रयत्न रखा है । वाक्यों के अन्त में और उनका सम्बन्ध करने बिन्दु के अन्वयार्थ निर्धारित किया है । इन दृष्टि से अन्य अनुवाद और इस अनुवाद में मौलिक अन्तर भी पाठकों की नज़रों में आया । आचारारङ्ग कुछ गंभीर सूक्त हैं । जो इन गंभीर और आचारों की उद्दिष्टा कह सकते हैं । उद्दिष्टा का सम्बन्ध गंभीर बिन्दु और अनुभव इस अङ्ग में है । अन्त में गान्धी जी की उद्दिष्टा पुस्तक का नाम देव और अन्तर्गत नाम का जो भी हो एक उमा पर लीला कर अपने प्रति समान उद्दिष्टा भावना रखने का उपदेश इस अङ्ग में स्पष्ट रूप से दिया है और इसने अथवा सम्बन्ध के ७ अङ्कों को विशेष कर इसी विषय के विवेक के लिए अनुसृत है । यह अङ्ग सूक्तों का अन्वयार्थ है और

७—आचारारङ्ग सूक्त (सप्त वाक्य) कुम्हारजी निवेदन पृ० ४३ ४४ तथा ४५ का अनुवाद—

इसके छोटे-छोटे वाक्य महान् जीवन-मूल से हैं। पाठक उन्हें पढ़ कर स्वयं इस बात का अनुभव कर सकेंगे।

डॉ० गुन्निग ने आचार्य के प्रथम व्युत्पत्त्य का जर्मन भाषा में अनुवाद करते हुए उसका नाम Worte Mahaviras 'महावीर के शब्द' रखा है। उनका मत है कि इस व्युत्पत्त्य में महावीर की भूल बाकी सुरक्षित है। इस विषय में श्री गोपाल दास बीरामाह पढ़ेल लिखते हैं —

“आचार्य के सम्मान में तो कहकर कहा जा सकता है कि यदि किसी भी सूत्र में महावीर के अपने शब्द नगरीत हुए हो ऐसा कह सकते हैं तो यह आचार्य है।” इस तरह इन सूक्ति संग्रह में पाठकों को महावीर के अपने शर्षवीर्यवीर वाक्यों का दर्शन हो सकेगा।

अन्त में मैं उन सब विद्वानों और प्रकाशकों के प्रति अपनी आभार कृतज्ञता प्रकट करता हूँ जिनकी रचना व प्रकाशनों का भव्यमोहन इन पुस्तक के सम्पादन में सहायक हुआ है। डॉ० एनेन्द्र कुमार ने पाठ मिलाने और त्रुटि सम्शोधन के कार्य में जो महामत्ता भुमें दी है उसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

१—महावीरस्वामी जो आचार्यमं (आवृत्ति पहेली) के गुजराती उपोद्घात पृ० १४ का अनुवाद।

पुस्तक सूची

इस पुस्तक के सम्पादन में जिन-जिन पुस्तकों का प्रयोजन किया गया है, उनकी सूची इस प्रकार है

- १ श्री आचारण सूत्रम् (मूल, निर्दुर्कि, टीका । प्रकाशक श्री मित्र चक्र साहित्य प्रचारक समिति, बम्बई)
- २ आचारण सूत्र (मूल पाठ डाक्टर वास्टर बुक्तिग द्वारा मजोबिठ)
- ३ आचारण सूत्र
- ४ र्वन सूत्र भाग १ (सर्वेजी अनुवाद । अनु० हर्मन जेफोबी Sacred Books of the East Vol. XXII)
- ५ आचारण सूत्र (प्रथम अतुम्कव का गुजराती अनुवाद, अनुवादक श्री)
- ६ महावीरस्वामीजी आचार वर्ग (गुजराती आध्यानुवाद । सम्पादन गोपालदान जीवामार्ड पटेल)
- ७ आचारण सूत्रम् (प्रथम अतुम्कव का हिन्दी अनुवाद । अनुवादक मुनि श्री श्रीमान्ममस जी)
- ८ आचारण सूत्र (प्रथम अतुम्कव का संस्कृतानुवाद अनु० श्री श्रीरा कुमारी बोहरा)

- ८ श्री वाचापदेय सूत्र (ज्ञान अखण्ड का हिंदी अनुवाद ।
छद्म ५ कवरपाठ कठिना)
- ९ ज्ञान साहित्य का इतिहास वाचापदेय सूत्र (श्री रामगुप्त
जासवणिया अवध कव ८ अ १२ से)
- १० ब्राह्मण व्याख्यान कल्लोलन वाले उल्लेखित बलिना (प्रथमा
श्री० श्रीरामानंद तिलदास काशीका पृ० ५)
- ११ श्रौतयोग विष्णु (नई)
- १२ A History of the Canonical Literature
of the Jains नई)
- १३ A History of Indian Literature VOL II
(by Maurice Winternitz, ph D)
- १४ Some Jaina Canonical Sutras (by Bimala
Charan Law M A B L ph D D Litt)
- १५ उपासयोग सूत्र
- १६ मन्वी सूत्र

विषय-क्रम

१ शस्त्र-परिज्ञा

(१) आत्मवादी कौन ?	५
(२) कर्म-समारम्भ	६
(३) पृथ्वीकायिक हिंसा	१३
(४) अप्कायिक हिंसा	१६
(५) अग्निकायिक हिंसा	२५
(६) वायुकायिक हिंसा	३१
(७) वनस्पतिकायिक हिंसा	३७
(८) जलकायिक हिंसा	४३
(९) शस्त्र-परिज्ञा	४६
(१०) एकेन्द्रियो की वेदना	६१
(११) महापथ	६७

२ लोक विजय

७७

३ शीतोष्णीय

१३६

४ सम्यक्त्व

१७३

५ लोकसार

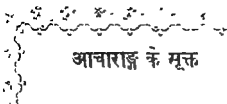
२०३

६ धूत

२५५

७ विमोक्ष

२५६



आचाराङ्ग के मूक्त



सुर्य मे आउत !

तेण भगवया एवमक्खार्य :

मैं ने सुना है, आयुष्मन् ।

उन भगवान् ने ऐसा कहा



आपाख्यदी

१—इसेगेति की उल्ला अह उगहा—

दुष्टिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमसि,
 दाहिनाओ वा दिसाओ आगओ अहमसि,
 पश्चिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमसि,
 उत्तराओ वा दिसाओ आगओ अहमसि,
 दक्षिणाओ वा दिसाओ आगओ अहमसि,
 अही दिसाओ वा आगओ अहमसि,
 अश्वरूपीओ वा दिसाओ अश्वरूपीओ वा
 आगओ अहमसि ।

२—इसेगेति की आग अह—अहि

मे आग अहमसि, अहि मे आग अहमसि,

आत्मवादी कौन ?

१

आत्मवादी कौन ?

१—संसार में कई लोगों को—“मैं पूर्व दिशा से
हूँ, दक्षिण दिशा से आया हूँ, पश्चिम दिशा से
हूँ, उत्तर दिशा से हूँ, चर्य दिशा से हूँ, अथो
दिशा से आया हूँ या अन्य किसी दिशा अनुदिशा से
हूँ”—यह सझा नहीं होती ।

२—कह्यो को—“मेरी आत्मा औप्यातिक—
पुनर्जन्म करने वाली—है, अच्छा नहीं है, मैं कौन था,

के घर जाती ? के बाइलो तुम इत पैदा
अविस्वामि ?

१—हे न तुम आयेजा यह समझाए
परमात्मके, अन्तेष्टिअविष्टि वा सोभाऊंजहा—
तुल्यिमाओ वा दिसाओ आगओ अह्योधि,
बाह अन्तरीओ दिसाओ अतुदिसाओ वा
आधओ अह्योधि ।

२—अन्तेष्टि न बाह अन्त—अविष्टि के
आमा अन्ताइओ ओ दिसाओ दिसाओ अतु-
दिसाओ वा अतुदिसाओ अन्ताओ दिसाओ
अतुदिसाओ ओज ।

३—हे आमावाही ओसावाही अन्ता-
वाही अविष्टावाही । (कु० १ अ० १ व० १)

आत्मवादी कौन ?

७

एव यहाँ से च्यक्कर ग्रेक में मैं क्या होऊँगा ?"—
यह ज्ञान नहीं होता ।

४—स्वमति से, दूसरे के कहने से, अथवा दूसरे से
सुनकर, मनुष्य फिर कभी—"मैं पूर्व आदि किसी
दिशा से हूँ, अथवा अन्य दिशा अनुदिशा से
हूँ"—यह जानता है ।

४— किसी की—"मेरी आत्मा औपचारिक
है—पुनर्जन्म करनेवाली है" तथा "जो इन दिशाओं
अनु-दिशाओं से है तथा सब दिशाओं अनुदिशाओं
में प्रगमन है, वह मैं ही हूँ"—यह होता है ।

५—जिसे ऐसा होता है वही पुरुष आत्मवादी,
लोकवादी, कर्मवादी, और क्रियावादी होता है ।

कर्म समारम्भ

: २ :

समारम्भ

१—मैंने किया, मैंने . करते हुए दूसरे का अनुमोदन किया, मैं करता हूँ करवाता हूँ करते हुए का अनुमोदन करता हूँ, मैं करूँगा, मैं कराऊँगा करते हुए का अनुमोदन करूँगा—लोक में सर्व कर्मसमारम्भ—
किया के —इतनी ही है। ये परिज्ञातव्य हैं—
॥ जन्मना चाहिये ।

२—मिथ्य है अपरिणतकर्मा पुरुष ही है जो ॥
दिशाओं, अनुदिशाओं से आया है, सर्व दिशाओं अनु-
दिशाओं को प्राप्य है, अनेक प्रकार की योनियों का
उपार्जन है तथा विविध प्रकार के स्पर्शों—६ सों
का प्रतिसंवेदन करता है ।

१—इससे वे जीवित रह परिपूर्ण
मायामययाय काश्चिदप्योक्त्याद दुःखपति
त्वावहेत् ।

एवायं सत्त्वायति कोमति कल्पसमा-
ख्या परिणामिकया भवति ।

२—कसेसे कोमति परि-
णामा भवति से ॥ दुःखी परिणामिकमे ति
वेति ।

(दु० १ अ० १ व० १)

३—अपने इस जीवन के लिए, परिकन्दन—यश के लिए, मान के लिए, पूजा—सत्कार के लिए, खन्न और मृत्यु से घृष्टकार्य पाने के लिए तथा दुःख के प्रसिधात के लिए (मनुष्य उपरोक्त रूप से क्रियाओं में प्रवृत्त होता है।)

लोक में सर्व कर्मसमारम्भ—क्रिया की माधनार्थ—इतनी ही है। इन्हें जानना चाहिए।

४—लोक में, कर्मसमारम्भ के ये प्रकार जिसे ज्ञात होते हैं, यही परिज्ञातकर्मा मुनि कहलाता है। यही मैं कहता हूँ।

पुनर्विजन्मसमारम्भ

१—अथभारा बो दि जौ पदपमाणा
असिन् सत्वेहि पुनर्विजन्मसमा-
रम्भे पुनर्विस्तर्त्तं समारम्भेमाणा अज्ज जणेण
कवे पाले विहिंससि ।

१—इत्यस्य केन बीजिपत्तं परिवर्ण
माणमपूयणात्, आश्वरक्षसोपयणात्, हुक्कापदि
वायवेऽऽ, से सकमेव पुनर्विस्तर्त्तं समारम्भात्,
अज्जेहि वा पुनर्विस्तर्त्तं समारम्भावेह, अज्जे
वा पुनर्विस्तर्त्तं समारम्भावे समणुजायत् ।

ए से अहिनात्, ए के अयोहिद्

३ पृथ्वीकायिक हिंसा

१—हम अनाार हैं, ऐसा कहते हुए भी कोई ज्ञा विविध प्रकार के शस्त्रों से, पृथ्वीविश्वक कर्मसमारम्भ करते हैं तथा पृथ्वीशस्त्र का समारम्भ करते हुये पृथ्वी के साथ साथ अन्य अनेक तरह के प्राणियों की भी हिंसा करते हैं।

२—मनुष्य, इस जीवन के लिए, सम्मान और पुजा के लिए, जन्म-मरण से छुटकारा पाने के लिए और दुःख निवारण के हेतु, स्वयं पृथ्वीकायशस्त्र का समारम्भ करता है, दूसरों से समारम्भ करवाता है और समारम्भ करनेवालों को समझता है।

यह पृथ्वीकाय की हिंसा, करनेवाले के लिए अहितकर होती है, यह उसके लिए अवधि का कारण होती है।

यस कहु गने, यस कहु मोदे, यस कहु
मोदे, यस कहु वरण

१—एकस्मिन् गच्छिन्तु कौर्य अस्मिन् विष्णु
स्मृतेहि सत्येहि पुत्रविष्णुसमाप्तेन पुत्रवि-
ष्णु समाप्तेनमात्रे अत्रे अत्रेकस्मिन् पात्रे
विहिताह ।

४—यस सत्य समाप्तेनमात्रे इत्येते
आत्मा अपरिष्कारा अत्रिन्दि,
यस सत्य असमाप्तेनमात्रे इत्येते
आत्मा परिष्कारा अत्रिन्दि ।

१—४ परिष्कारा येदासी तेव सत्य पुत्रवि
सत्य समाप्तेनमात्रे, येनस्मृतेहि पुत्रविष्णु समा

निश्चय ही, यह पृथ्वीकार्य का समारम्भ कचन का कारण है, मोह का कारण है, मृत्यु का कारण है और यही निश्चय ही मरक का हेतु है।

५—प्रवृत्ता-भाल-पूजा आदि भावनाओं में गुह्य मनुष्य इन विविध काल्पनीय द्वाया पृथ्वीकार्यविविधक कर्म-समारम्भ करता है तथा पृथ्वी काल्पनीय का समारम्भ करता हुआ, वह पृथ्वी जीवों की हिंसा के साथ-साथ अन्य अनेक तथ्य के प्राणियों की भी हिंसा करता है।

६—पृथ्वीकार्य के प्रति काल्पनीय-समारम्भ करनेवालों की ये सब आशय अज्ञान होते हैं।

पृथ्वीकार्य के प्रति काल्पनीय समारम्भ न करनेवालों की इन सब आशयों का ज्ञान होता है।

७—यह जानकर, मेधावी न स्वयं पृथ्वी काल्पनीय का समारम्भ करे, न दूसरी से इस काल्पनीय का समारम्भ

४

अनार्यकर्मवृत्तमात्रम्

१—अनार्य भो हि तौ पश्यन्माया,
अग्निं विद्यन्त्यग्नेहि तन्नेहि अनार्यकर्मवृत्तमा-
त्रमेव, अन्वसन्त समापुत्रमाया अग्ने अग्ने
कमे पाप्मे विदिच्छ ।

२—इत्यस्य चैव जीविष्यस्य परिवर्जना
अनार्यमाय, आत्मार्यमाय, इत्यस्य च
पाददेव, ते अग्नेव अन्वसन्त समापुत्रमायि,
अग्नेहि वा अन्वसन्त समापुत्रमायि, अग्ने
वा अन्वसन्त समापुत्रमायि समुत्तमाय
व ते अग्निमाय, व ते अग्निमाय

: ४ :

अपकायि हिंसा

१-हम जानाते हैं, ऐसा कहते हुए भी कई इन विविध प्रकार के सत्त्वों से, अप (पानी) विषाक कर्म-समाप्ति करते हैं तथा अपवृत्त का समाप्ति करते हुए, अप के साथ-साथ अन्य अन्य सत्त्व के प्राणियों की भी हिंसा करते हैं ।

२-मनुष्य, इस जीवन में, सम्मान और पूजा के लिए, जन्म और मरण से झूटकर पाने के लिए और बुद्ध निवारण के लिए स्वयं अपकाय-कर्म समाप्त करता है, दूसरों से समाप्ति करवाता है और समाप्ति करनेवालों की सम्प्रदाय है ।

यह अपकाय की हिंसा, करनेवाले के लिए, अहितकर है, यह लिए अवीर्य का कारण होती है ।

एत कहु गये, एत कहु मोहे, एत कहु
माये, एत कहु करये ।

१—कल गहिर कोय जमिय निरुपक
वेहिछयेहि । एयेन, कयसल
समारुपमाने जये जयेगले पाये बिहिसर

२—कल सल । एयेन
कारना अपरिण्वाया जयेहि,
कल सल अरुपारुपमाकस एयेन
कारना परिण्वाया जयेहि ।

३—ई परिण्वाय जेहानी केव सल कय
सल समारुपेना केहयेहि कयसल सल

निश्चय ही यह अपक्राय का समारम्भ बधन का है, मोह का कारण है, मृत्यु का कारण है और निश्चय ही यह नरक का हेतु है।

४—प्रकृता-मान-पूजा आदि श्री में गृह मनुष्य इन विविध शस्त्रों द्वारा अपक्राय विषयक कर्म करता है तथा अप्र का म हुआ, यह अप्र सीधों की हिंसा के साथ-साथ अनेक के प्राणियों की भी हिंसा है।

४—अपक्राय में शस्त्र मर करनेवालों की ये सम आरम्भ होते हैं।

अपक्राय में म न करनेवाली की इन सम आरम्भों का ज्ञान होता है।

५—यह जानकर, मेधावी न स्वयं अप्र की शस्त्रका समारम्भ करे, न दूसरों से इन शस्त्रोंका समारम्भ

रमायेजा, जब सब समारथिहि अपने व
समनुवायेजा ।

१—कलेवे जबसबसमारमा परिष्ठाथा
भवति ते ॥ इति परिष्ठावकमे नि
वेदि । ११ ॥

करावे, और न इन अस्त्रों का समारम्भ करने वाले को समझे ।

६—जिसको अणुजीव विषयक कर्म-समारम्भों का ज्ञान होता है वही परिक्षातर्कमा मुनि है—ऐसा मैं कहता हूँ ।



१—अजात शत्रुः किं करोति पश्यमानः
अभिषेकं विदुष्यहोर्हि कालेर्हि अगणितस्य समाप्त
मेवं अगणितस्य समाप्तमात्रे काले काले
काले काले विदुष्यहः ।

२—इत्यस्त येन जीमिषस्त परिवक्ष्य
माव्ययपूजनाय, ब्राह्मणरजसोव्याय, दुष्क
पठिचायदेवं ते सकमेव जगन्निष्ठं समारमति,
जग्मेहि वा जगन्निष्ठं समारमति, जग्मे
वा जगन्निष्ठं समारमति समपुत्राया ।

ए से अदिवाय, ए से अनोदिए !

: १ :

अधिकाधिक हिंसा

१—हम है, ऐसा कहते हुए भी कई इन विधि के कस्त्रों से अग्नि विमर्शक कर्म-समाप्त्य करते हैं तथा अग्नि कस्त्र का समाप्त्य करते हुए अग्नि के साथ साथ अन्य अन्य वस्तु के प्राप्ति की भी हिंसा करते हैं।

२—मनुष्य, इस जीवन में, प्रशंसा, सम्मान और के लिए, जन्म और मरण से घुटकरा पाने के लिए और दुःख-निवारण के हेतु, स्वयं अधिकाधिक का है, दूसरी से -समाप्त्य है और समाप्त्य करने वाले की है।

यह अधिकाधिक की हिंसा, करने वाले के लिए, महि-
का होती है, यह उनके लिए, अन्धेरी का होती है।

एष कहु गये, एष कहु ओरे, एष कहु
मारे, एष कहु परए ।

२—इत्यत्र गङ्गाय ओर अग्निम विलय
करीहि सन्नेहि अग्निकल्पसमारभेन अगनि-
सर्व समारम्भात् अन्ते अवेगच्छे गये
विहितम् ।

३—एव एव समारम्भात्कस इत्येते
कारणा अपरिष्कारा अकृति,

एव एव असमारम्भात्कस इत्येते
कारणा परिष्कारा अकृति ।

४—ए परिष्कारा अज्ञानी जेव सर्व अगनि
सर्व समारम्भेया वेवन्नेहि अगनिउत्त

निश्चय ही, यह अधिकार्य का समारम्भ कर्मण का
 है, मोह का है, का है और यही
 निश्चय ही का हेतु है।

३—मान पूजा आदि श्री में शुद्ध मनुष्य
 इन । सस्त्री द्वारा अधिकार्य विषयक कर्म-समारम्भ
 है तथा अग्नि का समारम्भ हुआ, यह
 की हिंसा के साथ-साथ अनेक तरह के
 की भी हिंसा है।

४—अधिकार्यकर्म समारम्भ करने वालों की ये
 सब होती हैं।

अधिकार्य में न करने वालों की इन
 सब आशम्भों का ज्ञान होता है।

५—यह, मेधावी न स्वर्ण अग्नि का
 समारम्भ करे, न दूसरों से ज्ञात का समारम्भ करावे,

समारम्भापेक्षया, अपरिचितस्य समारम्भमात्रे
अप्ये न समस्तुवापेक्षया,

१-कस्तेषु अपरिचितस्यसमारम्भा परि-
प्याया अपरिचितं ते ह कुर्वी परिप्यायकम्ये सि
वेति १।१ ४

और न इस कस्त्र का समाप्ति करने वाले को अच्छा समझे ।

६— जिसको आध्यात्मिक विषयक कर्म-समाप्तियों का ज्ञान होता है, वही परिष्कारकर्मी मुनि है—ऐसा मैं कहता हूँ ।

१

वाचस्पत्युत्तरम्

१—अथवादी नो हि को पञ्चमाणी,
अपिच विकल्पयेद्दि सत्येद्दि वाचस्पत्युत्तरमेव
वाचस्पत्युत्तरम् उत्तरायमाने अन्ये अथवादी
पाने विदितम्

२—इत्यत्र केव जीवितम्, अथवादी
मानवपुत्रम्, वाचस्पत्युत्तरम्, नुन
अथवादी, हे उत्तरमेव वाचस्पत्युत्तरम्,
अथवादी वाचस्पत्युत्तरम् उत्तरायमाने अन्ये वा
वाचस्पत्युत्तरम् उत्तरायमाने उत्तरायमानम् ।

उ हे अथवादी, उ हे अथवादी

: ६ :

वायुकायिक हिसा

१—हम जानते हैं, ऐसा कहते हुए भी कई इन विविध प्रकार के सत्त्वों से वायु विन्यक कर्म समारम्भ करते हैं तथा वायु ऊर्जा का समारम्भ करते हुए, वायु के साथ साथ अन्य अनेक तरह के प्राणियों की भी हिंसा करते हैं।

२—मनुष्य, इस जीवन में, प्रवृत्ता, सम्मान और पूजा के लिए, जन्म और मरण से घुटकार पाने के लिए और दुःख निवारण के हेतु वायुकायिक का समारम्भ करता है, दूसरों से समारम्भ करावता है और समारम्भ करनेवाली की क्षमशता है।

यह वायुकायिक की हिंसा, कर्मेच्छा के लिए, अहितकर है, यह उसके लिए अवधि का है।

यस कछु गये, एस कछु मोहै यस कछु
सारे, एस कछु नरए ।

१—इत्यत्र गच्छिष्य कश्चिद्व्यभिन्नं विद्वन्महोदयैर्हि
सत्येर्हि वाचकमवधारयन्तेर्न वाचकापसत्य
समाश्रयमाने काले कालेगच्छते पाथे विद्विष्यह ।

२—कस समय इन्हो
कारण्णा अपरिण्णावात्मवत्तिव ।

कस समय असमाश्रयतावत्तइ इन्हो
कारण्णा परिण्णावा नवत्तिव ।

३—तं परिण्णाव मेहावी केव सव बाध
कावत्तव समाश्रयेत्ता मेवज्जोर्हि वाचकाय

निश्चय है यह वायुकाय का समारम्भ बंध का कारण है, मोह का कारण है, मृत्यु का कारण है और यही निश्चय ही नरक का हेतु है।

३—प्रकृति-मान पूजा आदि मायनाओं में गूढ़ मनुष्य इन विविध अस्त्रों द्वारा वायुकाय विषयक कर्म-समारम्भ करता है तथा वायु का समारम्भ हुआ वह वायुकाय जीवों की हिंसा के साथ-साथ अन्य अन्य प्राण के प्राणियों की भी हिंसा करता है।

४—वायुकाय में समारम्भ करनेवाली की ये सब आत्माएँ होती हैं।

वायुकाय में समारम्भ न करनेवाली की इन सब आत्माओं का ज्ञान होता है।

५—यह जानकर मेधावी न स्वयं वायुजीवकाय-कार का करने, न दूसरों से इस अस्त्र का

सत्य समारम्भापेक्षया, जेवन्त्ये वाक्यसत्य
समारम्भे सम्प्रत्ययानेक्षया,

← कस्तेरे वाक्यावच्छेदसमारम्भा
परिष्ठाया भवन्ति ते ह तुल्यी परिष्ठापकमे
वि वेति ।

(अ० १ अ० १ क० ७)

समारम्भ करावे और न अस्त्र का समारम्भ करने वाले को अच्छा समझे ।

६—जिसको वायु-जीव विषयक कर्म समारम्भों का ज्ञान होता है, वही परिज्ञास्वकर्मा भुवि है—ऐसा मैं कहता हूँ ।

७

व्यस्तसङ्ख्यसमारम्भ

१-अकारो मो वि को वयवमात्रा,
 कल्पि विस्मयनेहि ज्ञेहि
 समारम्भे व्यस्तसङ्ख्य
 ज्ञेहि पक्षे विहितेति ।

२-व्यस्त केव जीवितस्त परिमद्व
 मात्रावप्युपजाय, वास्तव्यमोपजाय, हुक्कापदि
 वाच्ये, से सङ्ख्ये व्यस्तसङ्ख्य समारम्भ
 ज्ञेहि वा व्यस्तसङ्ख्य समारम्भावे, ज्ञेहि
 वा व्यस्तसङ्ख्य समारम्भयानि समुपजाय ।
 उ हे ज्ञेहिवा, उ हे ज्ञेहिवा ।

: ४ :

वनस्पतिकार्यिक हिंसा

१—हम जानते हैं, ऐसा करते हुए भी कई न विविध प्रकार के क्षत्रों से वनस्पति विषयक कर्म-समारम्भ करते हैं तथा वनस्पति का समारम्भ करते हुए वनस्पति के साथ साथ अन्य अन्य तरह के प्राणियों को भी हिंसा करते हैं।

२—मनुष्य, इस जीवन में, प्रशंसा, सम्मान और पूजाके लिए, जन्म और मरण से सुटकारा पाने के लिए और दुःख निवारण के हेतु, स्वयं वनस्पतिकार्य-शास्त्र का समारम्भ है, दूसरों से समारम्भ करवाता है और समारम्भ करनेवाली को अच्छा समझता है।

यस कहु गये, यस कहु बोये, यस कहु
मारे, यस कहु मर ।

१—इत्यत्र गौरि जीव जगित रिज
कयेहि कयेहि कलकलकलकलकलकलकलकलकल
कल कलकलकलकल कल कलकलकल कल
विदिबदि ।

२—कल कल कलकलकलकलकलकलकल
कलकल कलकलकलकलकलकलकलकलकल
कलकल कलकलकलकलकलकलकलकलकल

कल कल कलकलकलकलकलकलकल
कलकल कलकलकलकलकलकलकलकलकल
कलकल कलकलकलकलकलकलकलकलकल

यह कनस्पतिकार्य की हिंसा करनेवाले के लिए अस्ति-
कर होती है, यह उसके लिए अपोधि का होता है ।
निश्चय ही यह कनस्पतिकार्य-सं कर्मन का
है, मोह का है, मृत्यु का कारण है और यही
निश्चय ही का हेतु है ।

३—प्रार्थना, मान, पूजा आदि ओं में एवमनुष्य
इन विविध शस्त्री द्वारा कनस्पति विषयक कर्म-
रम्भ है तथा कनस्पति का
हृत्ता, यह कनस्पतिकार्य जीवों की हिंसा के
साथ-साथ अन्य अनेक के प्राणियों की भी हिं
है ।

४— तिरकार्य के प्रति -समाजस्य करनेवालों
को ये सब होते हैं ।

कनस्पतिकार्य के प्रति - म्म न करनेवालों
को इन सब आरम्भों का ज्ञान होता है ।

१—ॐ परिष्वात्त वेदावी नैव सव वणत्सा
 सव सवारविष्वा वेवन्वेहि वणत्सासव
 ससारवावेना, वेवन्वे वणत्सासव
 सवारवते सारववावेना,

१—कस्तेवे वणत्सासवसवारभा
 परिष्वावा कस्ति वे ॥ इवी परिष्वावकस्ते
 —वि वेति ।

(सु. १ अ. १ व. १)

५—यह मेघादी न वनस्पति का समारम्भ करे, न दूसरों से इस क्षेत्र का भ्रम करावे, और न इस का करनेवाले को समझे ।

६—जिसको वनस्पति जीव विषयक कर्म-समारम्भों का होता है, वही परिक्रातकर्मा मुनि है—देसा में है ।

उत्सवावस्थानसमारम्भ

१—अथवा यो हि एते पञ्चमाणाः
अग्निमिदं यजमाने हि सन्ते हि उत्सवावस्थाने मेम
उत्सवावस्थाने समारम्भमाणा अग्ने अथवा यजमाने
पाणे विहिंसति

२—अथवा येन जीविकस्य, परिपूर्ण
मागमपूज्यात् जात्यवस्थानेन वा हुक्म
पश्चिमाथदेव, ते अथवा उत्सवावस्थाने समार
भति अग्ने हि वा उत्सवावस्थाने समारम्भमा
अग्ने वा उत्सवावस्थाने समारम्भमा
समनुमान् ।

: ८ :

त्रसकायिक हिं

१—कृम हैं, ऐसा कहते हुए भी कई इन विविध प्रकार के शस्त्रों से त्रस विपक्षक कर्म-समारम्भ करते हैं तथा त्रसकाय- का समारम्भ करते हुए के साथ साथ अन्य अनेक के प्राणियों की भी हिंसा करते हैं ।

२—मनुष्य, इस जीवन में, , सम्मान और पूजा के लिए, जन्म और मरण से बचकरा पाने के लिए और दुःख के हेतु, स्वयं का करता है, दूसरों से -समारम्भ है और -समारम्भ करने वाली को अच्छा समझता है ।

ह से अद्विष्ट, ह से अयोहीर ।
 एस कहु गये, एस कहु बोहे, एस कहु
 माटे, एस कहु करर ।

१—हृन्मन पच्छिम कीर अमिय विकन
 सनेहि सनेहि ससकायसमारिय, उसकायसाल
 समारसमाने अन्ने अयेगकने पाने विरिसिदि ।

२—कन सन समारसयाकन हन्ने
 आरना अपरिण्वाया मयदि ।

कन सन हन्ने
 आरना परिण्वाया मयदि ।

यह त्रसकार्य की हिंसा करनेवाले के लिए अहितकर होती है, यह उसके लिए अवोधि का होती है।

निश्चय ही यह त्रसकार्य का समाप्ति कथन का कारण है, मोह का है, मृत्यु का है और यही निश्चय ही नरक का हेतु है।

३—प्रवृत्ता-मान पूजा आदि मायनाशों में गुद मनुष्य इन विविध शस्त्री द्वारा त्रसकार्य विपर्यय कर्म-समाप्ति है तथा शस्त्र का समाप्ति करता हुआ त्रस जीवों की हिंसा के साथ-साथ अन्य अनेक के प्राणियों की भी हिंसा करता है।

४—त्रसकार्य में -समाप्ति करनेवालों की ये सब आरम्भ होते हैं।

त्रसकार्य में -समाप्ति न करनेवालों को इन सब आरम्भों का ज्ञान होता है।

१—त परिणाम वेदापी येन सव तस
कायसत्य समारयेम्भा, वेदप्येहि तसकायसत्य
समारमायेम्भा, वेदप्ये तसकायसत्य
समारपति सममुभायेम्भा ।

१—जस्सेहे तसकायसमारमा परिण्यावा
भवति से हु हुमी परिणामकमे—ति वेदि ।

(अ० १ अ० १ व० १)

५—यह जानकर मेधावी न स्वयं व्रत जीवकाय के शत्रु का समारम्भ करे, न दूसरों से इस का समारम्भ करावे, और न इस के समारम्भ करनेवाले को सम्पझे ।

६—जिसको व्रत जीव विषयक कर्म समारम्भों का ज्ञान होता है, वही परित्यागकर्मी मुनि है—ऐसा मैं कहता हूँ ।

६ सत्यपरिज्ञा

१—सति याथा पुत्रोत्पिदा

(सू० १ अ० १ व० १)

२—ये केचि सति याथा कल्पनिष्ठितया
जीवा जयेते।

कल्प के कल्प के पार्श्व, कल्पया विमूढाश्च
पुत्रो कल्पेहि विमूढाश्च
कल्पयि वेति यो निरुपमाय
इह न कल्प जी। अथानायाय कल्प
जीवा विवादिना

यस्य केचि कल्पयि वाच, पुत्रो सत्य
नयेत्

(सू० १ अ० १ व० १)

: ६ :

कस्त्र-परिज्ञा

१—पृथ्वी में अनेक प्राणी हैं ।

२—मैं कहता हूँ—अपकार के आश्रित अनेक जीव प्राणी हैं ।

‘हमें घोंसे और विपुला के लिए जल कल्पता है—ऐसा मान तीर्ती मित्र-मित्र तें द्वारा अपकार के प्राणों को हरी हैं । इस विषय में उनके निर्णय करने में समर्थ नहीं हैं ।

हे शिष्य ! निर्ग्रन्थ-प्रवचन में छि जी की जल का विवेक गया है ।

के को सोचकर देख । जलकार के मित्त मित्त कहे गये हैं ।

१—वे हीनयोगसत्त्वस्तु केवले से
जसत्त्वस्तु केवले, वे जसत्त्वस्तु केवले से
हीनयोगसत्त्वस्तु केवले ।

हे वेदि—एति पाथा पुत्रहीनिति वा
१ पयनिति वा कृतिरिति वा
गोमयनिति वा कनकनिति वा, एति सपाति-
मापाथा आह्वय सत्यति, अगति च कदा
पुत्रा को सपायमायजति, हे सत्य सपाय
मायजति हे सत्य परिपायजति, हे सत्य
परिपायजति, हे सत्य कदायति ।

(कु० १ अ० १ व० ४)

४—हे वेदि इति आह्वयन्मय यमपि
आह्वयन्मय, इति कृतिन्मय यमपि कृति-

३—जो दीर्घजीवसूत्र—कनस्पतिकार्य के
अग्नि—को जानता है, वह —संयम को जानता
है, जो संयम को जानता है वह अग्नि के
को जानता है।

मैं हूँ पृथ्वी के आश्रय में, पत्तों के आश्रय में,
गोबर के आश्रय में और कचरे के आश्रय में प्राणी हूँ
तथा सम्पादित प्राणी हूँ जो अपने आप गिरते
हैं। अग्नि से स्पष्ट हो, ऐसे कितने ही प्राणी सदातः को
प्राप्त करते हैं, वहाँ को कितने ही मुक्ति
होते हैं और कितने ही मुक्ति हो वहाँ मृत्यु को प्राप्त
ही पाते हैं।

४—मैं हूँ जैसे मनुष्य अतिरिक्तशील है,
वैसे ही यह कनस्पति भी उत्पन्न है, जैसे

यस्य यस्य पुत्री यास्य आसुरा परित्रायति ।

हे मेमि अय्येमे असाय इयदि, अय्येमे
अजिवाय यईदि, अय्येमे असाय यईदि, अय्येमे
सोमियाय यईदि, का दिवयाय रिवाय असाय
विन्दाय पुन्दाय यन्काय रिवाय विवायाय
यसाय दासाय असाय यन्काय असाय अहि
मिवाय

असाय अज्जाय

अय्येमे रिचिदि मेदि वा यईदि

अय्येमे रिचिदि मेदि वा यईदि

अय्येमे रिचिदि मेदि वा यईदि ।

(सु० १ अ० १ व० १)

देस । विपयार्त मनुज्य दूसरे प्राणियों को
परिताप देते रहते हैं ।

मैं कहता हूँ—कोई इन्हें अर्धा के लिए
है, कोई इन्हें चर्म के लिए करता है, कोई इन्हें
मांस के लिए हनन है और कोई इन्हें शोणित के
लिए हनन करता है ।

के लिए, पित्त के लिए, चर्बी के
लिए, पिच्छी के लिए, पूछ के लिए, के लिए, सांग
के लिए, विदाग के लिए, टोंच के लिए, दाढ़ के लिए,
मज्जा के लिए, नसी के लिए, अस्थियों के लिए और
अस्थि-मज्जा के लिए हनन किया । है ।

इसी तरह अर्ध-अनर्ध अनेक प्रवीणों से इन्हें
है ।

कोई—इसने मुझे माघ—इस भावना से हिंसा
करता है ।

कोई—यह मुझे है—इस से हिंसा
है ।

कोई—यह मुझे मारिगा—इस भावना से हिंसा
है ।

४—सर्वसि पाप्मा पवित्रो रिसाह

पुं पारस्य दृष्टव्यात्

आपन्नस्यै अक्षिपति कथा ।

हे वेदि सति अत्राह्ना पाप्मा आह्व
सपर्वणि च अरिष्ठ च कलु पुन को अवाप-
मावज्जति, हे कल अवापमावज्जति हे कल
परिवापज्जति, हे कल परिवापज्जति हे कल
अवापति

(सूत्र १ अक्ष १ वृत् ७)

५—अपरिच्छाद्यजेदानी वेदस्य ह्यस्वीय
निष्ठावस्य समारयेणा वेदज्यैर्हि अस्वीय
निष्ठावस्य समारयेणा, वेदज्यै

६—प्राणी बिना प्रदिशाओं में पा रहे हैं।
हिंसा से होने वाले की देखनेवाला हिंसा
की आहितकर वायुकाय के से बनने में
समर्थ हो है।

७—सम्पत्तिम प्राणी हैं जो
गिर पकते हैं। वायुकाय के की से जीव
हो जाते हैं। जो क्या शायद हो जाते हैं वे
वहाँ मुख्य हो जाते हैं। जो वहाँ मुख्य हो जाते हैं,
वे वहाँ मृत्यु की प्राप्ति हो जाते हैं।

८—पुद्गलान् मनुष्य यह शब्द
जीवनिकम् का समारम्भ न करे, न दूसरों से छ
जीवनिकम् का समारम्भ करने और न छ जीव-

ब्रह्मीयनिष्ठाय सत्यं सधारयस्ते सममुद्योगेभ्यः,
 अस्तेते ब्रह्मीयनिष्ठायसत्यसधारमा परिष्णाया
 मयसि से हु हुनी परिष्णाय कन्ते सि वेति

(सु० १ अ० १ प० ७)

निकाय शास्त्र का समारम्भ करने वालों का अनुमोदन करे ।

जिस मुनि को वह जीवनिकाय के समारम्भ का परिशान होता है—जिसने उसको धान्य और छोड़ा है, वही परिष्ठातकर्मा मुनि है ।

૧૦

દર્શનિવેશના

અપેમે	અવમળે	અપેમે	અવમળે
અપેમે	પાવમળે	અપેમે	પાવમળે
અપેમે	દુખમળે	અપેમે	દુખમળે
અપેમે	અવમળે	અપેમે	અવમળે
અપેમે	આપુમળે	અપેમે	આપુમળે
અપેમે	અવમળે	અપેમે	અવમળે
અપેમે	અવિમળે	અપેમે	અવિમળે
અપેમે	આવિમળે	અપેમે	આવિમળે
અપેમે	અવમળે	અપેમે	અવમળે
અપેમે	પાવમળે	અપેમે	પાવમળે
અપેમે	વિદિમળે	અપેમે	વિદિમળે

: १० :

एकेन्द्रियों की वेदना

जैसे काई व्यक्ति अन्मान्ध (बहरे, मूक, गूरी)

पुरुष का भेदन करे छेदन करे

उसके पैरों का भेदन करे छेदन करे ,

उसके शुरुफों का भेदन करे छेदन करे

उसकी छाया का भेदन करे छेदन करे ,

उसकी जानु का भेदन करे छेदन करे ,

उसके सर का भेदन करे छेदन करे ,

उसके का भेदन करे छेदन करे ,

उसकी नाभि का भेदन करे छेदन करे ,

उसके घट का भेदन करे छेदन करे ,

उसके पासवों का भेदन करे छेदन करे ,

उसकी पीठ का भेदन करे करे ,

અપેગે કરમળે અપેમે કરમળે
 અપેમે દિવસમળે અપેમે દિવસમળે
 અપેમે વચસમળે અપેમે વચસમળે
 અપેમે સ્થાપમળે અપેમે સ્થાપમળે
 અપેમે વાદ્યમળે અપેમે વાદ્યમળે
 અપેમે દુષ્યમળે અપેમે દુષ્યમળે
 અપેમે જાતુકિમળે અપેમે જાતુકિમળે
 અપેમે નાદમળે અપેમે નાદમળે
 અપેમે ગીતમળે અપેમે ગીતમળે
 અપેમે રાગમળે અપેમે રાગમળે
 અપેમે રોગમળે અપેમે રોગમળે
 અપેમે કામમળે અપેમે કામમળે
 અપેમે શિષ્યમળે અપેમે શિષ્યમળે

उसकी छाती का मेदन करे छेदन करे,
 उसके हृदय का मेदन करे छेदन करे,
 उसके स्तनों का मेदन करे छेदन करे,
 उसके कर्णों का मेदन करे छेदन करे,
 उसकी भुजाओं का मेदन करे छेदन करे,
 उसके हाथों का मेदन करे छेदन करे,
 उसकी उगुलियों का मेदन करे छेदन करे,
 उसके नखों का मेदन करे छेदन करे,
 उसकी प्रिया का मेदन करे छेदन करे,
 उसकी दासी का मेदन करे छेदन करे,
 उसके घोड़ों का मेदन करे छेदन करे,
 उसके दायों का मेदन करे छेदन करे,
 उसकी चीज का मेदन करे छेदन करे,

અર્જુને તામ્રમયે અર્જુને તામ્રમયે
 અર્જુને તામ્રમયે અર્જુને તામ્રમયે
 અર્જુને તામ્રમયે અર્જુને તામ્રમયે
 અર્જુને તામ્રમયે અર્જુને તામ્રમયે
 અર્જુને તામ્રમયે અર્જુને તામ્રમયે
 અર્જુને તામ્રમયે અર્જુને તામ્રમયે
 અર્જુને તામ્રમયે અર્જુને તામ્રમયે
 અર્જુને તામ્રમયે અર્જુને તામ્રમયે
 અર્જુને તામ્રમયે અર્જુને તામ્રમયે
 અર્જુને તામ્રમયે અર્જુને તામ્રમયે

(કુ. ૧ અ. ૧ શ્લ ૧)

उसके हाथ का मेहन करे मेहन करे,
 उसके पैर का मेहन करे मेहन करे,
 उसके गाल का मेहन करे मेहन करे,
 उसके कान का मेहन करे मेहन करे,
 उसके नाक का मेहन करे मेहन करे,
 उसकी छाँती का मेहन करे मेहन करे,
 उसकी झुड़टि का मेहन करे मेहन करे,
 उसके का मेहन करे मेहन करे
 उसके सिर का मेहन करे मेहन करे,
 उसे पीटे या प्राण छीन करे तो जैसे उसे पीका
 है वैसे ही पुण्यी अदि फेनिग्र जीवों को
 होती है ।

११

सराणीहि

१—अहुषा अहिन्नादाय

(सु० १ अ० १ उ० ३)

२—ओमं च आनाद अमिहमेवा

अहुषीयम्

(सु० १ अ० १ उ० ३)

३—हे वेदि मेव सर्वश्रेया अम्नाह्निसाया
 मेव अद्याय अम्नाह्निसाया । हे ओम
 अम्नाह्निसाह से अद्याय , हे
 अद्याय से ओम अम्नाह्निसाह

(सु० १ अ० १ उ० ३)

: ११ :

१— की हिंसा —बोरी—है।

२—ती की —कपिल—से जीव-
की अकृपामय का कर—
भी प्राणी को मर न छोड़े ऐसे कम
समय का कर।

३—मैं हूँ—मनुष्य स्वयं का अपलाप
न करे, न अपनी आत्मा का करे। जो
का करता है वह ८। का १५ ।
है। जो का है वह का
है।

४—निष्पन्नहता पडिकेहिता पतेव परि
 निष्पार्थ सम्भेति पत्मान सम्भेति भूवाय
 सम्भेति भीषाय सम्भेति अचाय अत्तान
 अचदिनिष्पान्न मरुत्तर्ष हुक्क ति वेति

(मु० १ अ० १ पं० १)

५—ते अत्तान्न अत्तान्न
 ते पदिता अत्तान्न ।
 ते पदिता अत्तान्न
 ते अत्तान्न अत्तान्न ।
 एवं हुक्कम्भेति

(मु० १ अ० १ पं० २)

६—ते पत्तये हुक्कति ते हुक्कति पत्तये
 (मु० १ अ० १ पं० ४)

कैसे मैं जानूँ

कैसे मैं जानूँ कि मैं जानूँ
 कैसे मैं जानूँ कि मैं जानूँ
 कैसे मैं जानूँ कि मैं जानूँ
 कैसे मैं जानूँ कि मैं जानूँ
 कैसे मैं जानूँ कि मैं जानूँ
 कैसे मैं जानूँ कि मैं जानूँ
 कैसे मैं जानूँ कि मैं जानूँ
 कैसे मैं जानूँ कि मैं जानूँ
 कैसे मैं जानूँ कि मैं जानूँ
 कैसे मैं जानूँ कि मैं जानूँ
 कैसे मैं जानूँ कि मैं जानूँ
 कैसे मैं जानूँ कि मैं जानूँ

६४

—कौड़ी—है।

उत्तर—यह जीव
 का पालन करे—
 है ऐसी सम्भव

जीवी का अफसस
 पकरे। जो जीवी
 अफसस करता
 है वह जीवी का

અર્પેગે સાહુમળ્યે અર્પેગે સાહુમળ્યે
 અર્પેગે ગહમળ્યે અર્પેગે ગહમળ્યે
 અર્પેગે ગંહમળ્યે અર્પેગે ગંહમળ્યે
 અર્પેગે કમ્પમળ્યે અર્પેગે કમ્પમળ્યે
 અર્પેગે જાહમળ્યે અર્પેગે જાહમળ્યે
 અર્પેગે જાહિમળ્યે અર્પેગે જાહિમળ્યે
 અર્પેગે મહુદમળ્યે અર્પેગે મહુદમળ્યે
 અર્પેગે મિહાહમળ્યે અર્પેગે
 અર્પેગે સીસમળ્યે અર્પેગે સીસમળ્યે
 અર્પેગે સપમાર્ય અર્પેગે સર્વપ

(મુ. ૧ અ. ૧ સ. ૧)

अयेगे वासुमये अयेगे वासुमये
 अयेगे पद्ममये अयेगे गङ्गमये
 अयेगे गङ्गमये अयेगे गङ्गमये
 अयेगे कङ्कमये अयेगे कङ्कमये
 अयेगे वासुमये अयेगे वासुमये
 अयेगे अङ्गिमये अयेगे अङ्गिमये
 अयेगे मङ्गिमये अयेगे मङ्गिमये
 अयेगे जिहङ्गमये अयेगे जिहङ्गमये
 अयेगे सीङ्गमये अयेगे सीङ्गमये
 अयेगे सङ्गमये अयेगे सङ्गमये

(सु० १ अ० १ व० १)

४—निष्कामायाः प्रसिद्धेतिहा वसेय परि
 निष्कामाः सम्येति वामाः सम्येति वृषाः
 सम्येति वीषाः सम्येति वृषाः वृषाः
 वृषाः वृषाः वृषाः वृषाः वृषाः

(सू० १ अ० १ व० ६)

५—ये आनन्दस्य आनन्दः
 ते वदन्ति वामाः ।
 ते वदन्ति वामाः
 ते आनन्दस्य आनन्दः ।
 ये आनन्दस्य आनन्दः

(सू० १ अ० १ व० ७)

६—ये आनन्दस्य आनन्दः ते वदन्ति वामाः

(सू० १ अ० १ व० ८)

४—मैं चिन्तन कर, देख कर कहूँ हूँ—हर प्राणी
 को सुख प्रिय है। सर्व प्राणी, सर्व सुख, सर्व श्रिय,
 सर्व सखी को लप्रिय, महामय का कारण और
 दुःख कय है।

५—जो अपने को—अपनी दुःख
 की भावना को जानता है, वह यत्न को—दूसरे की
 भावना को भी जानता है। जो दूसरे की को
 जानता है वह अन्तरबल की भावना को जानता है।
 'सुख की भावना दूसरी में भी अपने हैं—बस
 शूल का अन्वेषण कर।

६—जो प्रमादी है, जो विषयाधीन है वह निश्चय ही
 दण्ड देने वाला—जीवी को हनन करने वाला है।

७—बरिहि एक अनिमूल विद्वद् दमर्णी
सया जयेहि सया अनमयेहि

(सु० १ अ० १ व० ४)

८—व परिणाव केहूनी इयानि जो
जगद पुन्यमजारी साधन

(सु० १ अ० १ व० ४)

९—कामयागा पुत्री पास

(सु० १ अ० १ व० ४)

१०—वे हुने से जायदे, वे जायदे
वे हुने

(सु० १ अ० १ व० ५)

७—सयतो, सदा यत्नम् और सदा स पौर
पुरुषों ने कर्मों को कर यह देखा है ।

८—यह मैं निश्चय करे कि मैं
कदा प निश्चय वह अब नहीं करूँगा ।

९—देख । हिंसा से सम्पत्ति नहीं है ।

१०—जी गुण है—विषयासक्ति है—जी ' है—
जन्मान्तर का फेर है, जी ' है—यह
विषयासक्ति है ।

११—कस्यै च न विदिमि पार्थिव पाशनाथे
कनाह पाशतिः सुकनाथे चक्रेण सुमेति

कदाचन भवति यदा कदाचन भवति
कदाचन भवति यदा कदाचन भवति

[illegible][illegible]

१२—कम कमसे कमसागर पुनी पुनी
 पुनीसागर कमसागारे कमसे कमसागर-
 सागरसे

(गुप्त - मरुत मरुत)

११—हे रोज़ हे बहादि बगमादे
राजकुमारे निरावपडिवाले अयारं कुशमावे
विवाहित

(4 2 4 4 4)

११— 'अथ, तिर्यक् तथा पूर्वादि हि जी म
देवता इत्या जीव क्य देवता है, सुन्ता इत्या जीव
सुन्ता है।

'अथ, तिर्यक् तथा पूर्वादि दिशाओं में
होता जीव क्य में होता है,
में होता है।

यह मूर्च्छनावृत्ति गया है।

१२—जी क्य और कण्ठादि की आसक्ति से आत्मा
की वृद्ध नहीं —नहीं १—यह का
समाधान कर बार-बार विषय से वक्त

का प्रमाणी हो (पुन) है।

१३—में है—जी है, (

दर्शन-व्यक्ति तप-कर्म) मोक्ष-मार्ग जिसे प्राप्त है और जो
माया नहीं वही इन गुणों से मुक्ति कहा गया है।

११—अथ विरिच पाद्व्य पासमाने
 क्वाह पासति, दुग्धानि उद्वह दुग्धेति
 अथ अथ पाद्व्य दुग्धमाने उद्वह
 दुग्धेति उद्वह अथि
 अथ अथ विवाहि

(सु० १ अ० १ व० ५)

१२—अथ अथ अथ अथ अथ अथ
 अथ अथ अथ अथ अथ अथ
 अथ अथ अथ अथ अथ अथ

(सु० १ अ० १ व० ५)

१३—अथ अथ अथ अथ अथ अथ
 अथ अथ अथ अथ अथ अथ
 अथ अथ अथ अथ अथ अथ

(सु० १ अ० १ व० ५)

११—सर्व, अथो, तिर्यक् तथा पूर्वादि दिशाओं में
देखता हुआ जीव रूप देखता है, सुनता हुआ जीव
सुनता है।

, अथो, तिर्यक् तथा पूर्वादि दिशाओं में
होता जीव रूप में होता है,
में आसक्त होता है।

यह मुख्यभाव ही कहा गया है।

१२—जो रूप और लब्धादि की आसक्ति से आत्मा
की गुरु नहीं —नहीं ।—यह का
उत्कर्षण कर बार-बार विषय से बाहर आ
कर प्रमादी हो (पुन) है।

१३—मैं तु—जो क्रय है, (ज्ञान
दर्शन-चारित्र-रूप-रूप) मोक्ष-मार्ग प्राप्त है और जो
नहीं वही इन गुणों से मुनि कहा गया है।

ॐ

अष्टाष्ट के छन्द

१४—त नो कश्चिदस्ति सङ्ग्राह्य मया
मम जगत् विविधा त नो नो कर
एवोदर कनोदर एव जगत्पारेति
पञ्चमः

(कु० १ अ० १ प० ६)

१५—जगत् सङ्ग्राह्य निम्नतो लोभ
जगत्पारिजात, विविधा विविध

(कु० १ अ० १ प० ६)

१६—जगत् नील जगत्पारिजात

(कु० १ अ० १ प० ६)

१४— जो विहित जो मसिमान् 'हिंसा
 नहीं करेगा'—ऐसी प्रतिज्ञा ग्रहण कर जीव-हिंसा नहीं
 उपरत—वास्तव में विरत है और जो हिंसा
 से है—विरत है वही अण्णार है ।

१५—विश्वोत्पत्ति—वाक्य की दूर रत्न । जिस
 के साथ निष्क्रमण किया है—गृह-स्वाग कर प्रवर्धना की
 है, उसी के साथ संयम का कर ।

१६—वीर पुरुष अहिंसा के महापथ पर चल चुके हैं ।

१४—अनय की विहित जानकर जो मतिमान् हिंसा नहीं करेगा—ऐसी प्रतिक्रिया प्रत्यक्ष कर जीव हिंसा नहीं करता वह संपन्न—कल्याण में विराट है और जो हिंसा से संपन्न है—विनाश है वह अन्याय कहल जाता है।

१५—विनीतचित्त—दण्ड की दूर रस । जिस के साथ निष्कलम किया है—गृहस्थाग कर प्राप्तिया की है उसी के साथ समय का पालन कर ।

१६—और पुन्य अहिंसा के महापद्य पर बल बुझे हैं ।

१२

होग्यविनयो

१—मे गुने से सुकृष्णने,
मे सुकृष्णने से गुने ।

२—इति से गुल्मी महारा परिभाषेय पुनो
पुनो कसे पयसे

३—उज्ज्वल—भाया मे, पिता मे, मज्जा मे,
पुत्रा मे, पूजा मे, कृपा मे, सहस्रपथ
सागरसमुद्रा मे, विविधपथपरिपथ
मोक्षपथकाय मे ।

उत्तर मङ्गल होय कसे पयसे ।

१२ •

लोकविजय

१—जो गुण हैं—इन्द्रियों के शब्दादि विषय हैं वे मूलस्थान—ससार के मूलभूत हैं। जो मूलस्थान—ससार के मूलभूत कारण हैं वे गुण—शब्दादि विषय हैं।

२—इसी जो विषयार्थी होता है वह बार-बार प्रमादि-प्रसक्त हो महान् परित्याग से (सतत रहता है)।

३—जैसे—मेरी माता, मेरा पिता, मेरी माया, मेरे पुत्र, मेरी पुत्री, मेरी पुत्र-कन्या, मेरे मित्र, मेरे परिजन, परिचित, मेरे नामा सम्बन्ध, सम्पत्ति, अन्न और वस्त्रादि—इस प्राणी इन सब में है।

यह प्रमाणी (निन्दित चिन्ता में) बाध करता है।

५—अहो व एषो व परिष्कृत्वाये
 काकाकाकसहस्रं स्रमोमृष्टी ककुकोमी काकुनी
 सहसाकमे वज्र सने पुनी पुनी

६—अर्ज व ककु आक
 मावमार्ज

६—ईकस्र—सोवपरिष्कायेहि परिष्का-
 नायेहि वज्रसुपरिष्कायेहि परिष्कायमायेहि
 काजपरिष्कायेहि परिष्कायमायेहि रसमापरि-
 ष्कायेहि परिष्कायमायेहि कासपरिष्कायेहि
 परिष्कायमायेहि अमिक्र व ककु वज्र स वेदाय
 एषो वे ककुमा ककुमाव ककुमनि

४—एत दिन इन्की चिन्ता से सयोगाधी—
 नाना सुख सयोग की करनेवाला, अर्थलोभी मनुष्य
 और की पत्ताह न कर,
 एकाग्र धित से, सशक्त पूर्वक - निर्मय रूप से—छूट-ससोट
 है और प्राणियों पर बार-बार है—
 उनकी हिंसा है।

५—निश्चय ही इस संसार में कितने ही मनुष्यों का
 खान्धव्य — बीका - होता है।

६—मोत्रेन्द्रियज्ञान के होने पर, च के
 बीज होने पर, नास्तिकज्ञान के बीज होने पर, विद्याज्ञान
 के होने पर, तथा स्वर्गन्द्रियज्ञान के बीज होने पर
 अपनी की देस कदाचित् वह किर्तव्य
 विमूढ़ हो है।

७—जोहि पा-सहिं सबस्य ते वि अ
 काया भिन्ना पुनिं परिचयनिं सीयनि ते
 विषय पक्का परिचयका

८—बाक ते सब आचार्य वा सत्पाद वा,
 हुन वि वेदि नाक आचार्य वा सत्पाद वा,

९—दे अ सत्पाद अ कीदृश अ विदुसाय

१०—इत्येव समुद्रि अरोविहाय

११—जगद अ कहु इय सनेहाय परि
 मनुष्यानि को आचार्य

३—जिनके साथ वह है, कदाचित् वे ही आत्मीय जन पहले उसका परिहार करते हैं, अथवा वह ही उसका बाद में परिहार करता है।

४—उस (जब इन्द्रिय-कल धीम हो रहे हों) झुन्मी ठी रखा करने या उन्हें क्षण देने में समर्थ नहीं होते और न हम ही उनकी रक्षा करने या उन्हें देने में समर्थ होते हैं।

५—पूछ हो जाने पर मनुष्य न हास्य के ही, न लीला के ही, न रस के ही और न मुहार के ही योग्य है।

१०—इस हम कभी पर ही।

११—इस मनुष्य-मव को बीच का मौका—सुयोग—समझ और मनुष्य भर भी न करे।

७-सोमं वा-समिं कवस्य ते वि य
 काया विपया पुमि परिपयन्ति सोमं ते
 मिस्य पन्था परिपयन्ता

८-वाक् ते क्व कृत्वाय वा कृत्वाय वाः
 कुं वि तेहि वाक् कृत्वाय वा कृत्वाय वाः

९-ते न कृत्वाय न कृत्वाय न विपुसाय

१०-कृत्वाय कृत्वाय कृत्वाय

११-कृत्वाय न कृत्वाय न कृत्वाय न
 कृत्वाय न कृत्वाय

७—जिनके साथ वह है कदाचित् वे ही
आत्मीय जन पण्डित परिहार करते हैं, अथवा वह
ही उनका बाद में परिहार है।

८—यस (जब अन्धित-बल कीज ही रहे ही)
कुटुम्बी तुम्हारी रक्षा करने या तुम्हें बरान देने में समर्थ
नहीं होते और न तुम ही उनकी रक्षा करने या उन्हें
धने में समर्थ होते हो।

९—यस ही जाल पर मनुष्य न हस्त्य के ही, न
लीका के ही, न रात के ही और न शृङ्गार के ही योग्य
है।

१०—इस तुम लम्बी पर हो।

११—इस मनुष्य-मद को बीच का भौक—सुयोग—
समझ और मर भी न करे।

१२ वधो जन्मेति मोक्षम व

१३—आमिदं कृत्ते यथा, वे ह्या,
हेता, वेता, मुनिता, विमुनिता, ज्ञेयता,
व्याख्याता जन्म करिहातिवि जन्मनामे

१४—व्याख्येयतेन वा अनिष्टिनिबधो
निबधे ज्ञेयेति जन्मनामे मोक्षनामे, वधो
वे यथा योगसमुत्पत्त्या समुत्पन्नानि

१५—आमिदं कृत्ते यथा वे ह्या

१२— और जीवन बीता जा रहा है ।

१३—जी इस नाटकवान् जीवन में प्रमादी होता है,

यह — बात करने , छेदक—छेदन करने ,
 भेदक—भेदन करने , छीपक—छुटने , विलो-
 पक—छुट-जासोट करने , उपद्रवी—भारने वाला
 और — उपमन करने , 'जी' में
 नहीं किया वह मैं कहना ऐसा हुआ (अपनी
 ही को साब लिए हुए ही चल है) ।

१४—इस संसार में कई-कई असह्यती मनुष्य बने हुए
 अथवा द्रव्यी का अपने उपभोग के लिए सेव्य
 करते हैं, पर उपभोग के कदाचित् रोगग्रस्त
 हो पड़ते हैं ।

१५—हम के दुःख पुनः-पुनः है—यह

अन्यविशेषेण न कदाचिद्व्यसनेह्यस्य स्यात्तादृ-
शसिद्धिः

१६—आय सोचपरिष्काराया अपरिशीला,
नैष्ठपरिष्काराया अपरिशीला, चायपरिष्काराया
अपरिशीला जीहपरिष्काराया अपरिशीला,
शरिरपरिष्काराया अपरिशीला, इत्येवमि-
द्विरुपसंगेहि धर्मात्तेहि अपरिशीनिहि आकम्प-
सम समष्टुषाधिरासि

(सु० १ अ० २ व० १)

१७—अय आकम्पे से जेवानी, सनसि
हउके

तथा धर्म की आयु को देकर, है पंडित ।
इसी धर्म को (धर्म का) अवसर ।

१६—जब तक शीत-कल नहीं होता, नैत्र कल
नहीं होता, मान-कल हीन नहीं होता, जिह्वा-कल
नहीं होता. "कल हीन नहीं होता—ये सारे कल
- उनके फटने-फूटने ही आत्मार्थ का
कर्म से—अच्छी से— न कर ।

१७—अरवि—संयम के प्रति अक्षयि भाव—को दूर
कर, ऐसा करनेवाला मेधावी धर्म मात्र में मुख होता है ।

१८—अथाभाय पुच्छाभि को विपृष्टि,
अथा मोहेय पाच्छा

१९—अपरिजहा मयित्वासी कच्छाया
कच्छे कामे अमिवाह, अथाभाय पुच्छिणी
परिजहति

२०—इह मोहे पुत्री पुत्री अथा मो
हन्वाय वी पाच्छा

२१—मिच्छया हुते अथा हे अथा पाद-
गामिणी अथममिमेव हुतुं अथा अथे कच्छे कामे
अमिवाह

१८—कितने ही मन्दबुद्धि मोह-ग्रस्त पुरुष
 से—घर के प्रति अथवा मास से—युक्त हैं, समय से
 पतित हो जाते हैं।

१९—हम अपरिग्रही बनो—इस से संयम में
 समुचित होकर कितने ही (मह पराक्रमी पुरुष) प्राच-
 मोगी को प्रह्न करते—सेवन करते हैं। कितने ही
 (नामधारी) मुनि, कैतराज देव की के भिलाफ,
 विषय मोगी को दूखते रहते हैं।

२०—इस प्रकार पुनः पुन विषयी के योग में आसक्त
 पुरुष न इस पार का है न उस पार का। (वह न
 इस लोक का है न परलोक का।

२१—जो पुरुष पराक्रमी हैं—लोक-संघा की पार कर
 चुके—वे विमुक्त हैं। वे लोक के प्रति अलोक से बूझा
 करते हुए, प्राच मोगी का सेवन नहीं करते।

२२—मियाणि डोम निमन्त्रय एतं अकले
आण्ड पासह

२३—वडिमेद्वार वाचकस्त, एतं अथगारिणि
पुण्य

२४—हे आचक, हे गामक,
हे मित्रक, हे पित्रक,
हे इषक, हे राषक,
हे चोरक, हे अविदिक,
हे भिषिक, हे धन्यक,
इत्येयं विस्मयेयं कजेयं
वसमाचारं

२२—जो किना किसी प्रकार के लोभ के, निष्काम
कर—प्रयत्न कर—(का करता
है) यह कर्म-रहित हो सब और देखता है ।

२३—यह विचार कर लो कि जो (हुए दिव्यों
की) का नहीं , जो गया है ।

२४—यह आरम्भक—करीबक, झरिबक, मित्रबक,
प्रेतबक, देवबक, , चोरबक, अहिनि , कृपबक,
(इनकी पाने के लिए) इन विभिन्न-विभिन्न
के कर्मों द्वारा दण्ड-समाधान—हिंसा है ।

आत्मनः के दृष्ट

२६—सपेक्षाय यथा कञ्चिद् वाचस्पत्युचि
कल्पयामे, कञ्चिद् वाचस्पत्युचि

२७—तं परिष्कार्य केदानीं तेन सप्त
परिधि कञ्चोर्हि दृष्ट समारम्भिता,
तेन जल्पं परिधि कञ्चोर्हि दृष्ट
समारम्भादिभ्या, परिधि कञ्चोर्हि
दृष्ट समारम्भतः हि जल्प न
समारम्भादिभ्या

२८—यस्य जलो जारिर्हि पयोश्च
जलेन कृच्छ्रे नोपदिष्टिभ्यासि

(कु० १ अ० २ व० २)

२५—(के हिंसा) या तो
(चपरोल) बिस्तर से जाते हैं या भय से ।
या तो पाप से मुक्ति लेगी, ऐसा हुआ मनुष्य
काय है, अथवा मैं से ।

२६—यह जान कर मेवादी पुरुष इन हिंसात्मक
कार्यों के द्वारा दण्डसमाख्य न करें— प्राणि-
हिंसा न करें, न इन कार्यों दूसरों से ।
करावे—प्राणी-हिंसा करावे और न इन कार्यों ।
करानेवाले—हिंसा करनेवाले—दूसरे व्यक्ति
को समझे ।

२७—यह अहिंसा का मार्ग मैं प्रवेष्टित हूँ—
कहा गया है ।

अतः पुरुष अपने को इस हिंसा में लिप्त
न करें

२८—हे कसब कलामोय, कसब की

कलामोय,

तो हूँ तो कहदिये,

मौज्बीहू,

इस सलाह को मोनासाह की मायासाह ?

कहि का की निजका

२९—कहा की हरिसे की कुने,

भूयहि बाब पकिरेर सल,

समिय कलामुफली

२८—यह जोय अनेक बार सब गौत्र में उत्पन्न हुआ है और अनेक बार नीच गौत्र में !

इससे न कोई छिन हुआ और न क्षयितक
(जीव सदा अतः प्रोत्सी ही रह और उ मय-
नहीं चला) ।

(जिसका सम्बन्ध मय-अन्न के साथ है) उसकी मत्त करो ।

यह विचार कर कौन अपने गौत्र का वाद करेगा—

शिखीरा पीटगा ? कौन उसका सम्मान करेगा ?

यह किस एक वाद में गूढ़ होगा - आसक्त होगा ?

२९—अब (अपनी सब गौत्र का) हर्ष न करे, न
(नीच गौत्र के) दूसरे किसी के इषित ही ।
विचार कर जान, — सब जीवों की प्रिय है ।

यह देखने समित है (किसी का
इसने व्यवहार न करे) ।

१०—उग्रह—जघन, मदिरा, मूत्र,
 कायस, कुंठ, कुम्भ, कडमर, घामर,
 घामर, उद्घमाकं जनेकह्माजो धोणीजो
 उग्रहः विष्णु-को काले परिचरिष्य

११—हे अशुक्लानि इजोक्त्व काईमरं
 अगुपरिभूमाने

१२—धीर्विं कुर्वीं इमेमेति मानवानं
 विचयन्तुयन्तयान्

३०—बधा होना, होना, गुना होना,
होना, दुहा होना, कुक्का होना, वीना होना,
होना और कोड़ी होना (—यह सब अभिमान का ही
है)। प्रमाद के ही और विविध रूप—
नाला योगियों में जन्म ग्रहण करता है, और अनेक
: के स्वरूपों का समिजन है (—
को यातनाओं की भीमता है)।

३१—(जारीत आदि मद से इस हीनत्व प्राप्त
होता है—) यह न समझने (अभिमान) पुरुष
हृत्पुष्ट हो, जन्म मरण के चक्र में — —
है।

३२—इस संसार में क्षेत्र और गुह्यदि में — मोह
करनेवाले मान्यों को जीवन पुरुष रूप से—
रूप से— है।

३३

आचार्य के रूप

३२—आचार्य विराट् यन्त्रिकुण्डल तत्
दिरभ्येन इतिवाचो परिगच्छति कवे
रथा ।

३३—न ह्यन्यो वा ह्यो वा विद्यो वा
विद्यम्

३४—समुच्चैर्वाके वीरिवाचो कश्चन
वाके शूरे विरिवाचुषे

३५—कश्चन वाचकवाचि, वे कश्चन
वाचि । आचार्यं परिवाच, वे कश्चन
वाचि ।

३६—कश्चन वाचक वाच्यो

३३—वे राज-विजिगी मणि कुम्हल, स्वर्ण और
सत्री प्राप्त कर उन्हें में रहते हैं।

उन्हें यहाँ तप, दम, निवम—कुछ नहीं दिखाई
देता।

३४—जीवन की कामना करने निराश
(अध्यायी) और भूख मनुष्य, मोगों के लिए
कुछ विपर्यय मात्र की प्राप्त होता है।

३५—जो मनुष्य भुवचारी हैं वे साक्षात्कार विषय
मोगों की वा नहीं करते। मुमुक्षु जन्म-मरण के
की जानकर सद्यः में ७७५ पूर्वक विचारे।

३६—काल के लिए कोई समय अ नहीं।
ले कोई मुक्त है, ऐसा नहीं है।

११—आर्य विरुद्ध अविदुष्यक एव
द्विरप्येव इतिवाचो परिमिच्छति तत्वेन
रथा ।

न इव क्वो वा क्वो वा निवर्त्तो वा
विरुद्ध

१२—सुख्यं वाके वीचिकामो कालम्
मात्रे शूले निमज्जितान्मुनेः

१३—इत्येव आचक्षति, के कथा तुव
चारिणो । आचक्षत इतिवाच, परे एकमे
वते ।

१४—यत्किं कालस्य नाम्नो

३३—तै राज-द्विगे पत्र, मणि, कुन्डल, स्वर्ण और
स्त्री प्राप्त कर उन्हें में रखे हैं।

उन्हें यहाँ सप, दम, हैं —कुछ नहीं दिखाई
देता।

३४—जीवन की करने निरा पाल
(सहाय) और मूल मनुष्य, मोर्गों के लिए
हुआ विपरीत भाव को प्राप्त होया है।

३५—जी मनुष्य प्रवृत्तारी हैं हैं सांसारिक विषय
मोर्गों की नहीं करते। समुद्र जन्म-मरण के
को समय में पुनर्क विचार।

३६—कल के लिए कोई समय है नहीं।
तै कोई भुक्त है, ऐसा नहीं है।

३० समे पाप्म विपत्तया,
 दुष्टाया दुष्कर्मिणा,
 अपिपत्तया विपत्तीभिः,
 अपिपत्तया,
 समेति विपत्तिं विप ।
 नास्त्यस्य कथम्

३०—दुष्टाया दु कर्मिणा
 अपिपत्तया कर्मो व अपिपत्तिं विपत्तिं,
 अपिपत्तया कर्मो व अपिपत्तिं विपत्तिं,
 अपिपत्तया कर्मो व अपिपत्तिं विपत्तिं,
 अपिपत्तया कर्मो व अपिपत्तिं विपत्तिं

३३—सर्व प्राणियों की आत्मा प्रिय है ।

सब को सात्वन्मयी—अनुकूल है और दुःख सब
की प्रतिफल ।

यह सब की अप्रिय है और जीवन सब की प्रिय ।

सर्व प्राणी जीने की करते हैं ।

सब को जीवन प्रिय है ।

अब प्राणी की हिंसा मत करो ।

३४—मुनि ने यह है—

निकर छोड़े जो जगो हैं—श्रीधर, मान,
लोक की नहीं चिन्तते वे की नहीं तर सकते हैं ।

वे जो अतीरगम हैं—इन्द्रियों के की
तीर नहीं पहुँचते, वे संसार के तट पर नहीं
सकते ।

वे जो हैं—एक-देव के पार नहीं पहुँचते
वे - का पार पाने में समर्थ नहीं हो ।

३६—आचार्यिन्द्र व आचार्य उमि ठाये
व बिहू। निन्द कण्ठोत्तमे उमि ठाये
निन्द।

३७—असौ पासकस गमि

३८—बाले पुन निदे कससमगुणे
नसमिपुनके हुन्नी हुन्नामनेव जायद
मशुपदिगह

(अ० १ अ० २ अ० ३)

३९—असौ हे साया रोगसमुपाया
समुपपत्ति।

४०—असौ वा असौ सकस हे यव व
पाया निम्मा पुनि परिपत्ति, सो वा हे
निम्मा कसस परिपत्ति

३९—आपकी पुण्य तथ्य भी सचम में
नहीं । यह वितथ्य की में
है।

४०—य —द्रष्टा—के लिए उपलब्ध नहीं है।

४१—मूर्ख, मोहग्रस्त और व्यक्ति का
दुःख समित नहीं होता। वह दुःखी व्यक्ति दुःखी के
ही आवर्ष में अनुपरीवारित होता रहता है दुःखी के ही
चक्र में अन्तमग्न है।

४२—फिर उसके कटग्रन्थि एक ही साथ उत्पन्न
अनेक रोगों का प्रादुर्भाव होता है।

४३—जिनके साथ मनुष्य वास करता है, वे ही निज
के लोग उसकी पक्षे निन्दा करते हैं, अथवा वह ही
पीछे उसकी निन्दा है।

४४—नाक ते सव वाचाय वा सखाय वा,
हुमपि वेहि नाक वाचाय वा सखाय वा

४५—आविहू हुक्क वसेथ सान

४६—बीजा मे न कहुसोवहि प्रमेगेहि
मानवान

४७—त परिगिअह हुपय वसयव अवि
कुमिया न ससिपिचार्थ विविदेव वाइवि ते
सव नचा वना, वणा वा नहुवा वा, ते
सव गहिर पिहू मोचवान

(कु० १ अ० १ व० ३)

४४—योग उत्पन्न होने पर वे ही रखा करने में
या उन्हें देने में समर्थ नहीं होते, और न तुम ही
उनका ज्ञान करने या उन्हें देने में समर्थ हो।

४५— तुम्हें प्रत्येक को ज्ञान
(दूसरों के भोक्तृ से प्राण काटें मत कर)।

४६—किस भी मनुष्यों में एक-एक ऐसी होती है
जो केवल मीलों का ही अनुशील—उन्हीं की
करती रहती है।

४७—फिर वह हिप्पे मनुष्य की रक्त, उन्हें में
लगा, तीन तीन योग से है और
साक्षात् मनुष्यों की भी भी है जोकी या
अधिक उसमें वह योग करने के लिए आसक्त रहता है।

४८—यस्यो हे काला विपरिमितः सम्यक्
मनोवर्तनं भवति ।

४९—यं हि हे काला दाम्बादा विमर्शान्ति,
अप्यवधार्यो वा हे अवधारयि, उपान्तो वा हे,
विशुद्धान्ति कलम् वा हे विमलम् वा हे,
अगारवाहेन वा हे कल्पम् ।

५०—इयं हे यत्तु अद्यत्तु कृतानि कल्पानि
वाहे पञ्चमामने देव दुष्कलेन दृष्टे विपरिधा-
सहमेव

५१ आर्षं च कर्षं च विपरिधं वरि । इयं
येन व सत्त्वमद्यत्तु

४८—मित्र क ने बची हुई न की
वह भीम सामग्री इकट्ठी हो जाने से वह प्रभु रानी
हो है।

४९—जतकी कमी —मगीदार छोट होती है,
कमी उस सम्पत्ति की और दुष्ट हैं, कमी
उसे होता है, कमी वह से प्राप्त होती है,
कमी वह मिलत ही जाती है और कमी घर में अन्न
कमने से वह कम जाती है।

५०—इस वह पूर्व ती के वह कम
इसका उस दुष्ट से—कन के नाम होने से उत्पन्न
दुष्ट से—भूत कन विपत्ति की प्राप्त है।

५१—हे और दुष्ट । तु और । का
त्वाम कर । तु इस कटि को रत्न कर, अपने ही आप
बुझी होता है।

१०—कैय सिखा, तेज भी सिखा, हमसे
नामधुनकसि के क्या मोहपावना

११—धीमि कोर फलद्वि
हे भी । वसन्ति 'कनाद बाबबनाह'
के हुक्काद, मीठाद, धाराद,
करगाद वरपतिरिक्काद ।

१२—तबन तूने क्या बासिबाण्ड
कनाह— बरि कलमाथो धामाढो,
मठ कुचकलस पमादन, अविमरण

५२—जिससे—जिस क्वादि से—कुम्हरी शक्तियों को सुनानुभव होता है, उससे कुम्हरी आत्मा को सुन नहीं होता ।

जो मोहग्रस्त हैं वे इस को नहीं समझते ।

५३—यह संसार से प्रव्यक्ति है—एक बुद्धि है । विद्यार्थी मनुष्य जियों को सुन का अवसर—धर—कहते हैं । हे मनुष्यो ! यह कथन उनके लिए बुद्धि, मोह, मूढ्य, तथा विविध योनि का कारण होता है ।

५४—सत्तर मूढ़ मनुष्य अपने धर्म को नहीं जानता । वीर पुरुषों ने महामोह में—कमल कामिनी में—अप्रमाद कहा है—प्रमाद न करने की शिक्षा दी है । अप्रमाद से शान्ति—मोक्ष—और प्रमाद से मूढ्य देन कर तथा इस शरीर को मंगुलधर्मी जान कर, पुरुष की प्रमाद

सोहाय्य मेहरबान सोहाय्य, नाक
पाव
बक से पराई
कम फल दुनी । मद्मन्त्र ।

२२

कर्म

२१—एक हीर परीक्षित के न निमित्त
जायगा

२२—न मे हो न दुष्टि
बोध कर्तुं न क्षिप्त,
परिसेविजो परिषीक्षा,
नव मोक्ष समुद्रादिनादि

से क्या प्रयोजन ? देस (ये मोक्ष वस्तुर्ष भी
सुम्ना शान्ति के लिए) पर्याप्त नहीं हैं ।

६ पुण्य । फिर सुम्ने कसी क्या प्रयोजन ?

७ मुनि । इस (मोर्षों में) देस ।

४५—(किम्ब मोर्ष के लिए) किसी भी प्राणी
की हिंसा मत कर ।

४६ जो पुण्य सत्कर्म में संयत्तिन नहीं होता, वही
वीर और प्रवर्धित है ।

४७—'मुझे नहीं देता' इस विचार से मुनि की
कोप—कोव—नहीं चाहिए । कोप प्राप्त होने पर
मुनि को निन्दा न करे । मना कर देने पर मुनि
जीट । इस मुनि मोर्ष की—संयम
की— . क्या करे ।

६८—अग्नि

सर्वे हि लोगस्त

कर्मसमाख्या कर्त्तव्यं वदता—अप्यगो वे
 पुत्राय दूषाय दुष्टाय नास्ति नास्ति एतं
 दास्यं दासीयं कर्मकर्म कर्मकर्म
 आचार्यपुत्रो यदेकं साक्षात्पश्यन्
 सन्निहितमिच्छति कर्म ।

सर्वे हि लोगस्त आचार्य भोक्तार

६९—अग्नि

अप्यगो वे

आदि

आदिपुत्रो यदेकं साक्षात्पश्यन्
 सन्निहितमिच्छति कर्म ।

५८—लोगों द्वारा व सस्त्री से कर्म-समारम्भ
 किये जाते हैं। जैसे कि मनुष्य अपने लिए, पुत्र,
 पुत्रियों, पुत्रवधूओं, आत्मीय जनों, जात्रियों, दास,
 दासी, ही और अतिथियों के लिए अपने
 भिन्न २ सम्पत्तियों के मोक्ष के लिए तथा और
 प्राप्त के मोक्ष के लिए सम्पत्ति और सम्पत्ति
 है।

(इस तरह) सत्कार में ॥ ऐसे मनुष्य हैं,
 जिनके मोक्ष के लिए (कर्म-) किये जाते हैं) ।

५९—संयम में समुचित—सद्यमी, अर्थात्,
 और अर्थात्—यही सन्धि है—निर्जोष आहार
 पानी पानी का विज्ञान है—यह दैनिकीका ही ।

६०—ये पार्श्व नाश्यापर व सममुखाग्र

कणात्मक पटिच्छद, निरामाशो
पटिच्छद।

६१—अद्विष्टमाने कवचिच्छद

तेन किमे व किमापर किमर्त व

६२—ये विच्छद कालने वाकने मावने
केपने कवचने विच्छदने समस्यपरवस्यने

३०—हम अकल्पनीय बाह्यर प्रश्न न करें, न कल्पें और न कल्पेवालों की अनुमोदना करें।

हमें आत्मवीर्य की सामर्थ्य प्रकटित पर जीवन पड़ावे।

३१—कामात्म इन्द्र-विश्व में अकल्पनीय है—उससे पूरा है।

हम न , न दूसरे से करीबानी और न करीबानी ही करते जानें।

३२—हो मित्र (मित्र के को जानने)
), (मित्र केवल ही अधिक को जानने)
), (मित्र के को जाननेवाला),
 (मित्र-प्रति के हम-अन्तर-को जानने-
 वाला), विनयक (मित्र के को जाननेवाला),

माधवने परिणत अथवाक्याने काकावुडा
अपडिने, सुखो डेसा निवड ।

६१—कल परिणत कल वावपुजन
सादर्य न कलासन कलु येव वाविजा

६२—कले कादारे अथवातो माव
वाविजा

कलमुदि न वाविजा

अकलमुदि न वाविजा

स्वभयपरसमकक्ष—(स्व-नि और पर-नि
को जाननेवाला) और (दूसरे के अभिप्राय
को जाननेवाला) होता है, जो परी में—भीगीपभीग
सामग्री में— नहीं करनेवाला होता है, जो यथा-
कार अनुष्ठान करनेवाला होता है, जो प्रसिद्ध नहीं
होता वह राम-रेश को छेद कर मोड़ मार्ग में खाली
है ।

६३—मिथु प्रसिद्ध—पात्र, पाद-
पुस्तक—रखीहरण, —
और आसन—पुस्तकी से बाध है ।

६४— उच्च होने पर —कितना
ठेका यह—जाने ।

मिथु मिथ्या मिलने पर गर्व न करे ।

न मिलने पर न करे ।

अग्निं कुरु न विदे
 परिगृह्यान्तो जप्यान् जपलक्षित्या
 जप्यान् न वास्तव परिहरित्या
 एतं कले वाचरिषां पश्य
 अहिम्नं कुरुते नोपविष्टित्याधि
 १६—कामा दुरजित्या, नोपविष्टित्याधि-

भूयः

कामकामी कुरु न व दुरिषे,
 ते नोपविष्टित्याधि विदुः परिगृह्या

१६—कामादुरजित्या, नोपविष्टित्याधि
 नोपविष्टित्याधि कुरु न व दुरिषे
 नोपविष्टित्याधि

अधिक मिलने पर संग्रह न करे ।

यह परिच्छेद आत्मा को दूर रखे ।

जो पैतृता हुआ (मूर्ख का) परित्यक्त करे ।

यह मार्ग आर्यों लोकियों प्रवेष्टित है ।

इसमें पुरुष कर्मकण्डन से लिप्त नहीं होता ।

६३—कामनाएँ दुरीतकाम हैं—

पार

दुष्कर है । यह जीवन कष्टदायी नहीं था ।

यह कामकामी—कामकर्म की

कर्मवाला—

पुरुष निश्चय ही लोभ है, विकल्प है, मर्यादा

से व्रत है, है उच्च दृष्टि और होता है ।

६४—जो ६—लोकियों और लोकियों—

लोक की विभिन्नता की देखनेवाला है वह लोक के

अधोभाग, सर्वोपभाग, और शिरोभाग को उनके

की—खानेवा है ।

६७—गङ्गा ओम् अनुपरिब्रुमाये

६८—यदि विद्या ह्य मन्त्रिभि
यत् इति यत्किञ्च नै नरे पठिष्यन्

६९—यदा ज्योति यदा वाहि
यदा वाहि यदा ज्यो
ज्यो-ज्यो पूरेत्पराणि पादह
पुष्टीयिष्यन्त्याह पथिष्य पथिष्येहाय

७०—ये यदा परिज्याय या न ह्य जात
ज्यायी

६४—वासना में एह मनुष्य इस ससार में पारि
करते हैं ।

६५—इस मनुष्य-जन्म में संति

का — जो कभी से ब्रह्म आत्मप्रेमों की
मुक्त है वही और प्रवृत्ता का पात्र है ।

६६—यह शरीर जैसा अन्दर से है वैसा ही
से है । और जैसा से है वैसा
ही से है ।

जानी देह के की अवधि तथा
करती देह के विन्न-विन्न मल-धारी की देखाता है ।
पण्डित यह सब देह, शरीर के वास्तविक की
समझे ।

६७—बुद्धिमान् यह जर धूसनवाला न
हो—त्यजि हृद् मोग पदार्थों का प्रयासी फिर से
उपकी करतीवाला न हो ।

मा तेषु विरिचयमायमावाक्य

७१—अथकाले कष्ट कर्म पुरिते यमुनाई

काले सुते, पुनी व काले सोद

केर बाहुदे यमनी

अभिर्ष पदिकद्विजय इत्यतः केव
पदिकद्विजय

अथकाले अथकाले

अथकाले इ केरय अथकाले कद

के व अथकाले अथकाले वेपि ।

■ अपनी मौल-विमुक्त । को फिर से मौलों में
आसक्त न होने दे ।

७१—विश्व ही मौल और कला में पुरुष
अत्यन्त भावार्थ होता है ।

अपने ही विषय से मूढ़ मनुष्य पुनः विश्वमौल का
लौल है ।

विश्वलौली मनुष्य अपनी आत्मा के प्रति वैर
है ।

यह जो बार-बार है वह की वृत्ति
के लिए । है ।

विश्व में आसक्त रसनिष्ठा मनुष्य अमासक्त
का । है ।

यह बाद में अपने की आर्त—दुः देश त्रास
का मार्ग नहीं हुआ केवल हृन्दन । है ।

इसलिए जो मैं कहता हूँ उसे जानो ।

१२२

आचार्य के श्रुत

४२—हे श्रुत नरिष्वप्यप्यमानि हे हवा
मिषा मिषा कुम्भवा विमुम्भवा जम्भवा,
नक्त करिष्यामिदि अन्वमाने

नक्तानि न न करोह

नक्त नाकृत्य स्मिन्

हे वा हे कारह वाके

न क्त अन्वमाने आचर

(श्रु० १ अ० २ व० ६)

४३—हे व कुम्भमानि आचार्य
समुद्राव कथा नाचक्य देव कुम्भ न
कारयेज्या

७२ कई अपने को चिकित्सा में पण्डित करते हैं ।
पर वे ने नहीं किया वह कर्मा ऐसा मानते हुए
, छेदन, भेदन, प्रच्छेदन, छेदन और
करते हैं ।

ऐसे चिकित्सक जिसकी चिकित्सा करते हैं, (
बुरा होता है) ।

ऐसे मूर्ख की सलाह से क्या लाभ ?

जो ऐसे चिकित्सक से चिकित्सा कराता है वह भी
मूर्ख है ।

सर्जनों की चिकित्सा ऐसी नहीं होती ।

७३—वह अद्वैत को—संयम को— उसमें
समन्वित हुआ है । इसलिए स्वयं प न करे
और न दूसरे से करावे ।

७७—विद्या कल्प अमर्त विष्णुराहुस्त
बहु जन्ममर्तसि कल्प

७८—सुखी कालजन्माये, सफल हुक्मोन
सुखे विष्णुराहुस्तये

७९—सफल विष्णुमायक सुखी धर्म पदुमा

८०—सुखीये धामा कल्पविद्या

८१—सुखीयेराय की निरुत्तरपाय, यद
सदिना कुरुष कल्पोपसवी

८२—य ममात्ममाई जगत् से कल्प

७५—कदाचित् कोई छ में से किसी एक का समारम्भ है, वह छ कवों में से प्रत्येक का आरम्भ करनेवाला माना है।

७६—विषय का अभी मनुष्य हुआ कुछ पाप कर्म से मुक्त बनने की प्राप्ति होता है।

७७—जीव अपने छ से भिन्न-भिन्न जन्मान्तर है।

७८—जिसमें ये प्राप्ति व्यर्थ है, (वह संसार स्वयंकुल छ है।)

७९—वह सुख न करे। इसी छ परिष्ठा—विवेक है और इसी से कर्मोपशान्ति होती है।

८०—जो ममत्व को छोड़ता है वह परिग्रह की

असाध्य । वे हू विद्वाने दुनी, असा नहि
असाध्य

८०—हं परिष्कार केवापी विद्या कोण
असा अंगारक से जल परिलक्षितवाति वि
बोले

८१—बाध कहे बरि
बरि न कहे रवि
असा अविमले बरि
असा बरि न असा

८२—अरे अरे अविवाचमाने विमिर
नहि हू अविमल

छोड़ता है। जिसके परिग्रह नहीं हैं, वही मुनि दृष्टिपथ
को—ज्ञानादिक मोक्षमार्ग को—देखनेवाला है।

५०—यह जानकर मेधावी (नमस्व बुद्धि की छोड़ें) :
बुद्धिमान लोक के स्वरूप को जान कर सदा लोकमहा
को छोड़कर संन्यास में पराक्रम करे। जहाँ मैं कहता हूँ।

५१—वीर पुरुष संन्यास में श्रम की सहाय नहीं
करता और न असंन्यास में श्रम की सहाय करता है।
भक्ति वीर पुरुष संन्यास में अन्यमनस्क नहीं होता, अतः
असंन्यास में भी अनुरक्त नहीं होता।

५२—बुद्ध और स्वर्ग की अच्छी राह करता
हूँ, मुमुक्षु इस संसार में असंन्यास-धीन में आनन्द-
भाव की धूँल की से देखे।

८१—हुशी मोम सभावाय, हुवे
कमलपरीला

८२—पत का केरवि, वीरा कमल
दक्षिणी

८३—कल बीरवरे हुनी विष्णु हुवे विरय
विषादिर वि वेनि

८४—हुमलहुमली अनाथाश्रम हुमलर गिहारा
वचन

(क १ क २ क ३)

८५—मुनि मीन को— से सम्पूर्ण उदासीन
भाव को—ग्रहण कर कर्म करीर को धुन डाले ।

८६—समझीं और —नीरस और कष्ट भोजन
का सेवन करते हैं ।

८७—ऐसे ही मुनि . को तिरते हैं । वे
ही उल्लेख, और विरत कहलाते हैं । ऐसा मैं
हूँ ।

८८—समाधा से चलेवाला—स्वच्छन्दता से चलन
करनेवाला—मुनि मोक्ष-गमन के योग्य नहीं होता ।

ऐसा कुछ मुनि यथार्थ प्रकृष्टता करने में
हिर्यकषाता है ।

८०—एतं वरि कथयिष्ये

अथैव कथयिष्ये

एतं वरि कथयिष्ये

८१—अ इति वरि कथयिष्ये
इति वरि कथयिष्ये

८२—अ इति वरि कथयिष्ये

५४— (जो मुनि के अनुसार है वह तिर्याग की परम्परा करने में नहीं हिचकिचाता ।)
ऐसा मुनि ही और है और यही प्रकाशित है ।

मुनि लोकतयोग की—वन आदि और राम
द्वेषादि अन्तर की—अतिशय है ।

लोकतयोग का अर्थ करना ही न्याय—सम्मान
—मनुष्यों का आचार—कहा गया है ।

५५—इस सत्ता में मनुष्यों को जो दुःख गया
है, इ पुनः उस दुःख को व परिहा द्वारा
जानकर प्र त्म परिहा द्वारा उच्छेद करते हैं ।

५६—यह दुःख सकलकृत है, वह जानकर
करने, करने और अनुमोदन रूप से द्वार—दुःख
सत्पति के निश्चय, अथ, और
योग का निर्देश करे ।

६०—ये अकल्पनीय से अकल्पनीय
 से अकल्पनीय से अकल्पनीय

६१—यदा दुष्कल कदा यदा दुष्कल
 कदा
 यदा दुष्कल कदा यदा दुष्कल
 कदा

६२—अपि न ह्ये अकल्पनीय

अपि न अपि अपि अपि

१०—जो अनन्यदर्शी है—जिसकी जिन वस्तुएँ
सत्पार्थ के हैं वृष्टि नहीं—वह अनन्यपारमी
है—वह धर्म के सिवा — वि —
रमन नहीं । जो अनन्यपारमी है—परमार्थ के
सिवा अन्यत्र नहीं — वह अनन्यदर्शी—
वृष्टि है।

११— धर्म जिस पुण्यवान् को धर्म
का उपदेश देता है, उसी को भी । और
जिस को धर्म कहते हैं उसी पुण्यवान्
को भी ।

१२— है अपने की मान साथ
की ।

ऐसा मान उत्पन्न करनेवाली धर्म-कथा में श्रेष्ठ नहीं
है, यह जानिये ।

६२—कैय पुरिसे क न कय

६३—कय बरि कयति, के कहे परिमोचय

६४—कय कय विरिष दिशाहु
से सज्जनो सज्ज परिजापारी
न किम्य हजययन बरि

६५—से मेदागी कहुवाचनकेपन्ये
के न कययहुन्य मनेसी

६६—हुनके पुन नो कहे नी हुनके

६७—से न न बारये न न बारये

११—यह पुत्र्य कौन है, किसकी
है, (यह जान कर चपेछ दो) ।

१२— वीर है और व है जो कर्मों से बंधी
है की मुक्त है ।

१३—सर्व, सभी और विविध विद्या में जो भी ज्ञान
और प्राप्ति है, मुमुक्षु उनके प्रति में
सर्वपरिहायणी होता है—विदित और अपरपूजा
है । ऐसा वीर विद्या में होता ।

१४—जो पुत्र्य से मुक्त होने का
सोचता है, वही मेधवी और कर्मों की विवेक करने में
निपुण है ।

१५— पुत्र्य न तो बन्ध है और न मुक्त है ।

१६—सत्त्वक पुत्र्य ने जो किया करे ।
उत्तुंगी भी नहीं किया, सत्त्वक ने उत्तुंगी न करे ।

अथार्य व न आरमे

६६—अर्थ अर्थ परिष्कार

लोपसम्पन्न व सम्पन्नो

(सूत्र १ अ० २ सू० ६)

जो ज्ञानियों द्वारा अनासक्त रहा है, उसे साधक
न करो।

११—हिंसा और द्वेष के कारणों की सख लोक
सजा को जानकर उनका त्याग करे।

हीनोपनिषद्

१-सुखा बहुवी, सुखा दुर्बिणो जागरति

२-हीनसि ज्ञानं बहिर्बाह्यं दुःखं

३-सत्यं लोकस्य बहिर्बाह्यं, सत्यं
लोकोपरम्

४-अस्मिन्ने सदा न कदा न दसा न
गंवा न जसा न बहिर्लज्जागता
भवति ते आत्मन्, आत्मन्, नैव न
कस्य न कस्य

५-कन्यानेहि परिवारम् लोचं दुर्बिणं
दुर्बे

सीतोष्णीय

१—अग्नि—अहोरात्र—सुप्त होते हैं अग्नि
सदा जागते हैं।

२—लोक में वृक्ष सबकी अहित कर जानो।

३— के की उनके
से—हिता से—विरत हो।

४—असि पुरुष की शब्द, कर्म, रस, गन्ध और
—इन विषयों का भक्षणीय होता है
यही आत्मविष् (आत्मज्ञ), ज्ञानविष् (ज्ञानी),
वेदविष् (वेदज्ञ), धर्मविष् (धर्मज्ञ) और ब्रह्मविष्
() कहलाता है।

५—जो प्रजा के द्वारा लोक के को अच्छी
है, वही अग्नि है।

१६

अध्याय के एक

१—वैयर्थिक उद्योग

आवृत्तियों

समाप्तिवाचक

२—वैयर्थिकवादी के विषय
अपवादों, अथवा जो केवल

३—आत्मनिरीक्षण

४—वैयर्थिक का दूसरा अनुपात

५—अपवादवादीवादी के अथवा जो
वैयर्थिक समाप्तिवाचक

४—कर्मों और कर्मों में कर्मों और कर्मों में
मैं को कर्मों में कर्मों में ।

५—सीधोपदेश स्थिति—कर्मों में मैं कर्मों में
कर्मों में कर्मों में कर्मों में कर्मों में कर्मों में
कर्मों में कर्मों में कर्मों में कर्मों में कर्मों में
कर्मों में कर्मों में कर्मों में कर्मों में कर्मों में ।

६—कर्मों में कर्मों में कर्मों में कर्मों में कर्मों में
कर्मों में कर्मों में कर्मों में कर्मों में कर्मों में ।

७—कर्मों में कर्मों में कर्मों में कर्मों में कर्मों में ।

८—कर्मों में कर्मों में कर्मों में कर्मों में कर्मों में
कर्मों में कर्मों में कर्मों में कर्मों में कर्मों में ।

११—पाणिष आकरपाणे अम्भसो
परिष्कार

१२—आत्मा य अम्भ वास

१३—आरम्य हुन्ममिवदि अम्भ

१४—आई आई पुत्र य अम्भ

१५—अग्नेमातो उदग्नेह अम्भ
मायमिदानी मया सुम्भ

१६—अम्भसो अग्नेहि
अरसो वाक्अग्नेहि
परि आवाहणे केवले

११—कष्ट से आसुर प्राणियों को दत्तकर हो
सयम कर ।

१२—हे मतिमान् विचार कर सब देस ।

१३—यह सारा पुत्र आरम्भ—हितरत्नक कार्यों
से ही उत्पन्न—हे, यह उनसे निवृत्त हो ।

१४—मयाही और प्रमाही मनुष्य पुनः-पुनः गर्वावास
करता है ।

१५—ऊर्ध्व और क्ष्य आदि दिश्यों में उदासीन,
सरल और से करनेवाला पुत्र्य मृत्यु से
घटकारा पा है ।

१६—जो सब्द क्पादि कलमौगी में अग्रमही होता
है, जो पाप कर्मों से निवृत्त होता है वीर,
गुणात्मा और केवल है ।

१७—ये पञ्चव्यापकस्यस्त केयव्ये-
 से अक्षयस्त केयव्ये
 के अक्षयस्त केयव्ये
 से पञ्चव्यापक स्यस्त केयव्ये

१८—अक्षयस्त अक्षयौ व विजय

१९—अक्षय अक्षयौ अक्षय

२०—अक्षय व अक्षय
 अक्षय अक्षय व अक्षय अक्षय
 अक्षय अक्षय अक्षय अक्षय
 अक्षय अक्षय अक्षय अक्षय

२१—अक्षय अक्षय अक्षय अक्षय

(अक्षय १ अक्षय २ अक्षय ३)

१७—जो उद्योग विषयों की से जनित
हिता को जानता है, वह समय को है। जो
समय को है वह उद्योग की से
उत्पन्न हिता को ज है।

१८—कर्म रक्षित जीव के व्यवहार—सत्कार में सम्म
नरणादि रूप व्यवहार—गर्ह होता।

१९—कर्म से ही उपाधि उत्पन्न है।

२०—कर्म के स्वरूप को जान , कर्म की जाह
हिता को जानकर, सब उपाय ग्रह कर दोनों अंशों—
प्राण-देव—से दूर रह मेधावी संयम में करे।

२१—लोक के स्वरूप को जान जो लोक का
परित्याग करते हैं, वे मेधावी हैं।

२१—वायु च भुक्ति च ह्यश्नय पाप्मे,
 मृष्टि आमे पक्षिणः साव ।
 कण्डादिभिर्गो वरयति वज्रा,
 कण्डाद्वी च कोटि वाय ॥

२२—अमुच पात्र इह यन्निवर्त,
 जगन्मन्त्री कण्डाद्वी ।
 वायुः सिद्धा निचय कटि,
 कण्डाद्वी पुनरिति वज्र ॥

२३—अग्नि ते हाक्याय,
 इह वरयति वज्र ।
 वायु वायुः कोटि,
 के वरयति वज्र ॥

२२—हे । मैं और जरा को देख ।
विचार कर जान—सब प्राणियों की प्रिय है ।
इसीलिए स सन्यस्तुष्टि परमार्थ की पाप
कर्म नहीं ।

२३—इस में मनुष्य के चाब मौह का
छेदन कर । , हिताजीवी और इस लोक तथा
पर लोक में विपक्ष-सुखी की करनेवाला होता है ।

भोग में रुद्ध जीव कर्मों का करते हैं । और
जी कर्मों का संन्य करते हैं वे बार-बार गर्मावास करते
हैं ।

२४—पापी मनुष्य हठी विनोद के पशीमूल की
का है और इसे क्रिया कर
है । ऐसे अज्ञानी मनुष्य का सत्ता
सक्ति । वह तेर ही है ।

२३—कन्ताऽऽतिविश्वो परमसि जन्ता,
 वाक्कन्तासी न करोह पाप ।
 कर्म न मूक न विनिव नष्टि
 पतिविश्वान्न निकन्तासी ॥

२४—यस्य मरणा पशुन्मर

२५—ये ह विद्वन्मृग्यी

२६—लोमासी परमसी विविश्वीवी
 क्यसी सवित्र सविष्ट सवा क्ये
 वाक्कन्तासी परिमप

२५—आत्मकन्दर्पी विद्वान्—पापों से मय साने

—परमार्थ को जान कर पाप नहीं ।।

हे धीर पुण्य । तू मूलकर्म और अग्र कर्म को आत्मा से
विनि कर । इस संसार—मूल के मूल और
अग्र को छिन्न कर तू निष्कर्मवर्ती—निष्कर्म आत्मा को
वैभवेवाक्य—कन ।

२६—यह पुण्य—मूलकर्म और अग्रकर्म को छिन्न
करनेवाला पुण्य— से मुक्त हो जाता है ।

२७—वही मुनि संसार के भय को देखने होता
है ।

२८—लोक में कर्तव्य, एतन्मतेषु,
समितियुक्त ज्ञानवान् मुनि में सदा यत्नवान् हो
की अपेक्षा इत्या जीवन पद्धति करे ।

२१—कुरु व कुरु पाव कव्य यवत

सन्निधि निरु कुम्भदा

२२—कवीनय केशवी कव्य पाव कव्य

कोमल

२३—कवीनयिसे कुरु कव्य पुरिसे

२४—से कव्यकदाय कव्यपरिभाषाय

कव्य परिभाषाय

कव्यकव्यपरिभाषाय कव्यकव्यपरिभाषाय

२५—से केव्य कविह्य पुरिह्य

२६—कविह्यिषा कव्यह्य इन्वेवेगेसमुद्दिषा

२९—निश्चय ही मैंने आसक्तिवश पाप कर्म
किये हैं—ऐसा सोचकर सत्य में धुँसि कर—दड़ हो ।

३०—सत्य में एत पुत्रिवान् मनुष्य सर्व पाप कर्मों
का हन्य कर देता है ।

३१—निश्चय ही मनुष्य बहुचित्तवान् है—वह विविध
कामगार है ।

३२—इन दुष्पूत ज्ञात्री की पुत्ति के यह
दुसरी को मारने, दुसरी को दुःख देने, उन्हें अपने अधीन
करने, जनपदों को मारने, जनपदों को परित्याग देने और
जनपदों को अपने अधीन करने के लिये तैयार है ।

३३—जो इस विषय की ओं को पूर्ण करने की
है वह चतुर्न्त्री को जल से है ।

३४—इन भय भोग्य ओं का आशेषन करनेवाले

कदा ह विद्वन् तो सेने विस्तारं
पाशिव नाम्नी

३६—अथवा कदा कदा,
कदा कदा च आह्वये।

३७—हे न कदा, न कदाचन, कदा
मातृवाच्य।

३८—विद्विद् नहि, अथ कदाचन

३९—अनीकदा
निराह्वये पाशिव कदाचि।

४०—अथवाच्यं इति वा न वीर।
अथवाच्यं पाशिव निरव्ययं,

भी कई उन्हें छोड़ संयम के लिए हुए हैं। अतः
शानी उन्हें निश्चार देना दूसरी बार सेवन
न करे।

३५— प्राणियों की वो बात ही क्या देखें तक
के और —जन्म और मरण—आन कर
मुनि। मैं—सद्यम मैं—विचरण कर।

३६—मुमुक्षु किसी जीव की हिंसा न करे, न करावे
और न हिंसा करते हुए का अनुमोदन करे।

३७—विषयानन्द से घृणा कर। स्थिराँ में त
मत्त ही।

३८—मुमुक्षु उच्छर्द्धा ही और पाप कर्मा से
विरत ही।

३९—वीर पुस्त्य अति क्रोध और मान का हनन
करे। वह लोभ का फल महान् नरक देखे। अतः वीर

उन्हा व हरि विरय महार,
विदिज्य सोबं कहुसुगामी ॥

४०—सब परिष्कार सुखल । बरि,
सोब परिष्कार बरिज्य वरि ।
कमलज कर्त, हर मानवेहि,
सो पाणिज कने समारसिज्याधि ॥
(सु० १ अ० ३ व० २)

४१—सवि डीयल आधिवा

४२—जायजी परिवा पास
कहा न हवा व विभाव

पुरुष पाप का फल देन वृत्तियों से हलका बन वल—हिंसा से विरत हो और कर्म-क्षेत्र का छेद कर चले ।

४०—धीर पुरुष ग्रन्थि और खीत—संसार प्रवाह—
के को ही से इन्द्रिय-
द्वारा विकर । छन्दस्त्रय प्राप्त कर धीर पुरुष को इस
मनुष्य जीवन में प्राणियों के प्राणों का —हल
—नहीं चाहिए ।

४१—मनुष्य नर-भय को जानकर (न करे) ।

४२—दूसरे प्राणियों को आत्मवृत्त्य देन ।
अतः किसी भी प्राणी की हिंसा न कर, न दूसरे
से करा ।

४३—अग्निश्च अन्नमन्नविशिष्टिभ्याम्
पक्षिभ्यश्च न कर्षेत् पाद काल
किं कालं हुवीं कारणं विद्या ?

४४—सम्यक्कृतसुखेभ्यश्च अन्नार्थं विज्यसाधय

४५—अन्नमन्नपरः शाली, यो पमाय
कदाचिद्

४६—आप्तुते कदा वीरि, कदासावाह
आनय

४७—विद्यां क्लेशं च विज्यसा
मदा कदाचिद् व

४३—यदि कोई एक दूसरे की लज्जा से या भय से पाप कर्म नहीं करता तो इसका कारण क्या उसका सुमित्त है ?

४४—वहाँ—जहाँ पाप कर्म से बचने का प्रयत्न हो वहाँ—कर्म का विचार कर अपनी आत्मा को प्रसन्न रख ।

४५—कानी, जिसे आत्म साधना के सिवा अन्य कुछ परम नहीं, कभी नहीं ।

४६—जातमग्न पुत्र सदा वीरभाव से के निर्वाह के स्थिर मात्र से जीवन-निर्वाह करे ।

४७—महान् या दृढ़—सब कर्माँ में—विशेष भाव रख ।

३८--आपका वह परिणाम होदिनि
 जेदि आदिस्वभावैदि से न
 निम्न, न निम्न, न उन्नत, न
 उन्नत कर्म सम्बन्ध,

३९--अपने दुर्ग न करि को,
 निम्न ही १ दिवा आत्मनिष्ठ १
 आदि को वह आत्मनिष्ठ,
 उन्नत ही आत्मनिष्ठ ॥
 आदिस्व न २ आत्मनिष्ठ,
 उन्नत निम्नवि उन्नत ३ ।
 निम्नस्व विद्यापुष्पी,
 निम्नस्वविद्या कर्मो गेही ॥

४८—गति सि को कर जिसने दोनों ही
कन्तों—राग और देव—को छोड़ दिया है वह सारे लोक
में किसी के द्वारा नहीं होता, नहीं होता, राग
नहीं होता और न निवृत्त होता है ।

४९—इस जीव का अतीत क्या था ? भविष्य
क्या है—इस मृत और भविष्य का कितने ही विचार
ही नहीं करते ।

कितने ही कहते हैं इस संसार में जीव का जो
अतीत या भविष्य है ।

त अतीतार्थ को—अतीत के र भविष्य
होने की बात की या भविष्यार्थ को—भविष्य के
अतीत होने की बात को स्वीकार नहीं करते । अतीत या
भविष्य कर्मों के ही होता है, जब कर
पवित्र आचरणभूत महर्षि कर्मों को धुन कर दाय
कर ।

१०—अथ अर्थ के आचारे
कल्पि कल्पे चरे

११—अथ ह्यस्य परिणाम,
आसीत्पुत्रो परिणाम

१२—पुरिषा । इत्येव ह्यस्य निच
किं बहिषा निचमिच्छति ?

१३—अथ आनिष्ठा अवाक्य
त आनिष्ठा इत्यक्य
अथ आनिष्ठा इत्यक्य
त आनिष्ठा अवाक्य

१४—पुरिषा । अवाक्येव अविधिनिष्ठ
अथ इत्येव अवाक्येव ।

५०—ज्ञानी के लिए अरुति क्या है और क्या है ? वह हृदय-शोक के दि में अन्तस्तक रह समय में विचर ।

५१—सत्यक सभी प्रकार का शोक कर मन, , कल्या को गोपन कर वा कर ।

५२—हे पुरुष ! तू ही ऐसा मित्र है । क्यों मित्र की आज्ञा कर रहा है ?

५३—जिस पुरुष को विषयों के संग को दूर करने-वाला समझो, उसकी मोक्ष प्राप्त करनेवाला चाहिये । जिसकी मोक्ष प्राप्त करनेवाला समझो, उसको विषय का संग दूर करनेवाला सम चाहिये ।

५४—हे पुरुष ! अपनी आत्मा का ही निग्रह कर । ऐसा करने से तू दुःखों से मुक्त ।

१६—पुरिता । अन्वेषेण सममिवाप्यादि
जन्मस्त आचार्य से जगद्विद् मेधावी
भार वर ।

१७—सदिनो जन्ममाचार्य केन
कामतुमस्तव

१८—दुष्टनो वीरिभक्त्य वरिभक्त्यमान्य
दुष्टनाम अस्ति नरे पञ्चायति

१९—सदिनो दुष्टनामवचार्य पुनो नो
कमस्तव ।

५५—है पुरुष । सत्य को ही अच्छी ।

जो सत्य को में चरित्रित होता है—जो
की धना में सचमी होता है - वह मेवापी मार—
को घर है ।

५६—सत्य के पुरुष धर्म को कर देय
को अच्छी देखता है ।

५७—जम और होय वह मनुष्य इस जीवन के लिए
एवं , और पाने के लिए पाप धर्म
। है और ऐसा करने में विचलित हो जा
करते हैं ।

५८— वही दुःख से होने
पर न समझते ।

५६—पाणिन्य इति लोकालोकावधानौ
मुच्यते

(सु० १ अ० ३ सू० ३)

५७—हे कदा कोह न याव न याव न
कोह न

५८—आधान निमित्ता समाह्वयि

५९—हे का वाच्य हे सत्य वाच्य
हे सत्य वाच्य हे का वाच्य

६०—सत्ययो अप्यस्त्य यव
सत्ययो अप्यस्त्य यविय यव ।

५९—देख ! संयमी चावक लोक के प्रपञ्चों से मुक्त हो जाये है ।

६०—मुमुक्षु ज्ञेय, मान, और लोभ का करने उन्हें छोड़ने होता है ।

६१—कर्म-आ को रोक कर स्वकृत कर्मों का भोग चाहिये ।

६२—ओ एक को है, वह सब को है, ओ सब को है, वह एक को है ।

६३—को—प्रमाटी पुरुष को सब ओर से भय है ।
—व्यपनायी को किसी ओर से भय नहीं ।

१४—ये का सती हो गई नाथे
ये गई सती हो गई नाथे

१५—कहा कौनका कसोत कति बीटा
कसोत ।
नैन पर नैन नाथकसति नैन

१६—कस विविचमाने पुत्री विविचद !
पुत्री वि क

१७—पुत्री नाथक केदनी

६४ जो एक को — जीतता है वह अनेकों
को — जीतता है। जो अनेकों को नमस्ते—
जीतता है वह एक को १- जीतता है।

६५— के दुःख को या और साधक
साधारण बहनों का कर— कर—संयमकपी
से यात्रा करते हैं। वे उत्तरोत्तर आगे बढ़ते
जाते हैं और असकल जीवन को आकांक्षा
नहीं करते।

६६—जो एककी कथ है, वह एकाधिक को
कथ करता है। जो एकाधिक की कथ है, वह
एक की कथ है।

६७—मेवापी को
अदायान् ही।

६४—ये का वामे से बहु नामे
से बहु नामे से का नामे

६५—कदा कोमल्य कमोम वीति पीरा
अदायान् ।
नोनक वति नावकंनवि वीधिव

६६—का विनिप्यनामि कुओ विनिप्यह ।
कुओ नि का

६७—कही आनाम वेदापी

६४ जो एक को —जो है वह अनेकों को —जीता है। जो अनेकों को नमता— जीता है वह एक को — जीता है।

६५— के दुःख को ज और साधक सात्त्विक ब्रह्म की कर—ब्रह्मकर—संयमकी से यात्रा करते हैं। वे उत्तरोत्तर आगे बढ़ते जाते हैं और मुक्त अस्तित्व जीवन को आकांक्षा नहीं करते।

६६—जो एकको ब्रह्म है, वह एकाधिक को ब्रह्म करता है। जो एकाधिक को ब्रह्म है, वह एक को ब्रह्म है।

६७—मे उत्तम की जानकर श्रद्धावान् हो।

६८—कोय व जायाय कमिषमेव्या
काम्योत्तम

६९—अति सत परेय पर
नतिव अतर्क परेय पर

७०—के कोरईसी से मायईसी
के मायईसी से मायाईसी
के मायाईसी से कोमईसी
के कोमईसी से पित्रईसी
के पित्रईसी से दोषईसी
के दोषईसी से मोषईसी
के मोषईसी से कम्पईसी
के कम्पईसी से कम्पईसी

६८— बारा लोक की अकुतोभय

हे—ऐसा संयममय जीवन यापन कर जिससे किसीकी भय न रहे।

६९— एक से बढ़ कर एक है।

अ —अहिंसा से बढ़ कर नहीं।

७०—जी शोकदर्शी है वह मानदर्शी है, जी माण-
दर्शी है वह मायादर्शी है, जी मायादर्शी है वह लोभदर्शी
है, जी लोभदर्शी है वह प्रेम—रागदर्शी है, जी रागदर्शी है
वह द्वेषदर्शी है, जी द्वेषदर्शी है वह मोहदर्शी है, जी
मोहदर्शी है वह गर्मदर्शी है, जी गर्मदर्शी है वह
जन्मदर्शी है,

मे अम्बदसी से माण्दसी
 के माण्दसी से परण्दसी
 के परण्दसी से तिरिण्दसी
 के तिरिण्दसी से दुण्दसी

७१—सो मैदासी अभिविचट्टिञ्जा कीद व
 माज व माव व कोम व पिञ्ज व
 वीस व नीर्द व गज्ज व जम्ब व
 मार व मरव व तिरिव व दुण्द व ।

७२—विचलित कोण्दरी पादपत्त व
 निम्ब व मजि विवेदि
 (सू १ अ० ३ व० ४)

जो जन्मदशी है वह मारदशी है, जो मारदशी है
वह नरकदशी है, जो नरकदशी है वह तिर्यकदशी
है, जो तिर्यकदशी है वह दुःखदशी है ।

७१—इस दशनेत्राका मेघादी पुत्रर त्रिध, मान,
, लीम, राजा, देव, मोक्ष, गर्म, खन्म,
तिर्यग्योनि एवं दुःख से निवृत्त होता है ।

७२—मृदा के उपाधि होती है या नहीं ?—नहीं
होती ।

सुमय

१—हे वेदि मे कईया मे व पशुपत्न्या
 मे व आपत्तिस्था अरुणा भगवतो
 हे सन्ने दत्ताष्टकालि का वासति
 का पत्न्यविति का पत्न्यविति
 सन्ने वाया सन्ने भूया
 सन्ने बीजा सन्ने सदा
 न ईश्वर्या न अम्बावैषम्या
 न परिचित्त्या न परिजावैषम्या
 न अम्बावैषम्या
 सन्ने सन्ने सुदे निहृ आसद

समिन्ना कोन केवन्देहि पवेष्ट, व
 अम्बा-वैषम्या वा अम्बावैषम्या वा अम्बावैषम्या

स

१—मैं हूँ—छो अतीव, और मरिच्य
में होने वाले अहित भावान् हूँ वे सब ऐसा कहते,
ऐसा बोलते, ऐसी करते और ऐसी
करते हैं कि—

किसी भी मृत, किसी भी जीव और किसी भी
सत्त्व को न मारना चाहिये, उस पर हा न करनी
चाहिये, (जिस दस्त इसी कर्म से) परधीन न
चाहिये, और न उसकी उपद्रव चाहिये ।

यही धर्म मृत, जित्य और त है

लोक को—जीव को जान कर सेवक—
दूसरों के सेवक—संताप—को समझने वाले—हानी
पुरुषों ने उत्पन्न या अनुत्पन्न, उपनिन्दित

वा कपुषद्विषु वा कवरवद्वेष्ट वा
 कपुषवरवद्वेष्ट वा सोषद्विषु वा
 कषोषद्विषु वा कषोषवद्वेष्ट वा
 कषोषवद्वेष्ट वा

कपुष के कष के
 कषोष के कपुष

२-क कपुष व विष्टे व विष्टिषो
 कपिषु कपुष कषा कषा

३-विष्टे विष्टे विष्टिषो
 सो कषोषवद्वेष्ट के
 कषोषवद्वेष्ट कषा कषा कपुष कपुष
 कषोषवद्वेष्ट

या अनुपस्थित, हिंसा से विरक्त या अभिरक्त, उपाधि
सहित या उपाधि रहित, सयोगी या असयोगी—सब के
लिए यही धर्म है।

यही धर्म सर्व्व है, यही सबार्थ है। जिन
में यही कल है।

२—य धर्म धर्म की जा करने के
बाद उसे न लिपारे और न करे।

३—क्यों मैं—विषयी में निर्भेद को—विपति मृत्यु
की प्राप्त कर।

लोकैक्य—लौकिक है भोगों की न कर।
जिसके यह लोकैक्य नहीं है उसके पाप
प्रवृत्ति हैं सक्ती है ?

४—सिद्धं भुवः यव विष्णोः न यव
परिकल्पितम्

५—समेताणां फलेनाणां पुनो पुनो वाह
नकल्पति ।

६—कसो न सजो न कस्यस्ये वीरि
सत्वा

७—यमते बहिषा वास कल्पस्ये सत्वा
परिकल्पितासि विधेभि

(सू० १ अ० ४ सू० १)

८—ये आत्मन्ता ये परितस्तवा
ये परितस्तवा ये आत्मन्ता

४—वह जो सपर कल गया है वह देखा, सुना, माना और विशेष रूप से जाना हुआ है।

५—जो मनुष्य संसार में आसक्त और विषयी में लीन है, वे बार-बार किन्नि किन्नि योगियों में अन्तान्तर करते हैं।

६—अदसह विषयी पुरुष सदा और—अविचलित और रात दिन यत्नान्—संन्य में सावधान हो।

७—विषयी पुरुष प्रमादी—असंयति—को आज्ञा के बाहर समस्त सदा अग्रमाय पूर्वक पराक्रम करे। यह मैं कहता हूँ।

८—जो आसक्त हैं—कर्म प्रवेश के वार हैं—वे ही अनुभूत अवस्था में परित्यक्त हैं—कर्म प्रवेश को रोकने

हे अवास्तवा हे अपरिस्थवा
 हे अपरिस्थवा हे अवास्तवा
 पर पर अनुष्ममाने
 होव न आचार्य अमिस्तमिन्वा
 पुत्रो पश्येत्

६—आचार्य आपी इह राज्यवान् ससार-
 पठितव्यान् अनुष्ममाचार्य विज्ञान
 कदाच

१०—अनुपविष्टवा अनुवा कदाच

वाले हैं। जो परिश्रम है—कर्म प्रवेश को रोकने के
 उपाय है वे ही (अनुकूल में) हैं—
 कर्म प्रवेश के द्वार हैं। जो हैं—कर्म प्रवेश के
 नहीं हैं वे भी (अपनावे बिना) स्वर—कर्म-
 प्रवेश के रोकनेवाले—नहीं होते। जो —कर्म
 प्रवेश के हैं—वे ही (रोकने पर) अनाश्रय
 होते हैं।

पुनश्च-पुनश्च प्रवेष्टित इम पदों को समझनेवाला
 लोक को तीर्थंकर की से जान कर आश्रय से
 निवृत्त ही और स्वर में प्रवृत्ति करे।

९—कर्म पुनश्च, सप्तारो होने पर भी जो मनुष्य सबुद्ध
 और विद्वान्-प्राप्त—विवेकशील होते हैं, उन्हें यह धर्म
 कहते हैं।

१०—हैं आर्त और प्रमाथि मनुष्यो। मैं उन्हें यथार्थ-

आहोमन्त्रादिर्न सिद्धेति
 नाभागमो मन्त्रमुद्राश्च अत्रि
 द्वापदीया वक्षानिकेया
 काठ्यवदीया विष्वक्मिथिना
 पुत्रो पुत्रो वाह पञ्चमवति

११—अत्रोपेति तत्र तत्र वक्ष्यो मन्त्र
 आहोमन्त्रादि काठे परिचयिष्यति
 अत्रि कथ्येति कथ्येति अत्रि
 परिचिह्न अत्रि कथ्येति कथ्येति
 नो अत्रि परिचिह्न

सच्ची बात है। मृत्यु के मूह में पड़े हुए प्राणी को मृत्यु न आये ऐसा नहीं हो । जो ओं के पद हैं, के निवास हैं, कलगृहीत हैं—समय पर पचाए पद हैं और जो रात दिन करने में निविष्ट हैं वे भिन्न-भिन्न जातियों में—खीच-योनियों में जन्म-जन्मान्तर करते हैं ।

११—जगत् में कितने ही लोगों को मानी मरकादि से गाल पारि सा होता है। वे बार-बार पाप कर्म कर नरक, पशु आदि योनियों में हुंनैवाते —दुखों का प्रतिपवेदन करते रहते हैं ।

अत्यन्त ब्रह्म कर्म से प्राणी अत्यन्त वेदनावाली योनि में उत्पन्न होता है। जो अत्यन्त ब्रह्म कर्म नहीं वह अपनी वेदनावाली योनि में नहीं जाता ।

१२—को वयसि जहुवाणि नाणी
पाणी वयसि जहुवाणि को

१३—जात्यसि कैवल्यही डोवसि समया
व समया व पुत्रो विवाह वयसि
हे विदु न के ह्यु न के मय
न के विज्जान न के वहु जद
विरिध रिछाहु सम्पत्तो सुपकि-
केहिम न के—सम्मे वाचा सम्मे
जीवा सम्मे सुवा सम्मे सत्ता
सत्तम्मा जम्मावेवम्मा परिधा
वेवम्मा परिनेवम्मा भवेवम्मा,
इत्यपि ज्ञान्द जत्तित्त दोषो
जम्मारिणवयम्मेव

१२—जो श्रुतकेवली कहते हैं वह ही केवलज्ञानी कहते हैं। जो के जानी कहते हैं वही श्रुतकेवली कहते हैं।

१३—इस संसार में अनेक अमन्य ब्राह्मण मित्र ही तर्क वितर्क करते हुए कहते हैं—“हमने देखा, सुना, मनन किया, विवेक माया से और ‘अथो ह तिर्यक्’ दिखा में सर्व प्रकार से पर्यालोचना की है कि किसी भी प्राणी, किसी भी जीव, किसी भी भूत, किसी भी सत्त्व को मारने, उस पर हुक्मस्त करने, उसे देने, उसे दासदासी रूप में अधीन रखने और उसके प्रति करने में कोई दोष नहीं है - यह तुम जानो।”
पर यह मैं का है।

पुनः निश्चय समय पश्येन पश्येन
 पुच्छिस्तामि, इत्यो वयाह्वा । किं
 मे सायं दुष्कृतं कथाय ? समि-
 का पश्चिममे वाणि का दूया—
 सम्येति वायाय सम्येति दूयाय
 सम्येति वीयाय सम्येति कथाय
 कथाय कथारिक्ताय कथाय
 दुष्कृतं हि मेति

कथ मे कथारिक्ता मे कथ कथाय
 —मे दुष्कृतं क मे दुष्कृतं क मे
 दुष्कृतं क मे दुष्कृतं क मे दुष्कृतं
 क मे दुष्कृतं क मे दुष्कृतं क मे
 दुष्कृतं क मे दुष्कृतं क मे दुष्कृतं
 क मे दुष्कृतं क मे दुष्कृतं क मे

पहले मिन्न-मिन्न दर्जनों के को

। हूँ—“हे वादियों ! तुम्हें साक्षात्— —दु—
अप्रिय है या ता दु—अप्रिय ?”

। देने पर—अर्थात् हमें दुःख अप्रिय है, सुख अप्रिय
नहीं है उनके ऐसा कहने पर—हम उन्हें कहेंगे—तुम्हारी
ही तात्पर्य सर्व प्राणी, सर्व जीव, सर्व मूल और सर्व सत्त्वों
को ता—दुःख वैलीय करने , महामय का
और पीड़ा है। ऐसा मैं हूँ।

और “हे वे इस सम्बन्ध में ऐसा कहते हैं।

“यह सुनने देखा, । सुना, उल्टा
किया, क्या है । और , अघो
विराट् दिशा में पर्यालोकन किया है जो कहते,
बोलते, प्रस्थापित करते और करते हो कि किसी

अथर्ववेद का मंत्र का पत्नेह
 का पत्नेह—उम्मे पावा उम्मे
 बीषा उम्मे मूषा उम्मे अवा
 इयन्वा अवावेयन्वा परिवारेयन्वा
 परिवारेयन्वा अवेयन्वा। इति
 वाग्देवमिन्द्र योषी, अवादि-
 यत्तमेव

अथ पुनः अथर्ववेदमन्त्रो वा
 वाग्देवमिन्द्र योषी अथर्ववेद
 वेदो—उम्मे पावा उम्मे बीषा
 उम्मे मूषा उम्मे अवा य इयन्वा
 य अवावेयन्वा य परिवारेयन्वा

भी प्राणी, जीव, भूत और को मारने, उस पर
 क्रुद्धमत करने, उसे परित्याग देने, उसे दास-दासी रूप से
 करने और उसे करने में दोष नहीं है, ऐसा
 जानी । ऐसा तुम्हारा कहना " है ।"

"हम तो ऐसा कहते, ऐसा बोलते, ऐसा प्रभावित
 करते और ऐसी " हैं कि किसी भी प्राणी,
 किसी भी जीव, किसी भी भूत और किसी भी सत्त्व को
 नहीं मारना चाहिये, उस पर नहीं करनी चाहिये,
 उसे परित्याग नहीं देना चाहिये, उसे दासदासी रूप से

म परिचायेयन्ता न ज्ञयेयन्ता
 इत्यपि ज्ञानं न स्थित्य होसो
 ज्ञानपरिवर्तनमेव

(सु० १ अ० ४ क० १)

१४—ज्येहि न परिचा न ज्ञोग से
 ज्ञानयोगि के केह विष्णू
 जगुपीह पास विनिजयदा
 के केह सदा पछि नयति
 जग हुक्का जगपिछति जगू
 जगदमल हुक्कमिछति जग
 जगमाहु जगदमिछो

अधीन नहीं चाहिए और न उसके प्रति
चाहिये । इसी में दोष नहीं है ऐसा जानी ।

ऐसा कहना—सर्व है ।

१४—जो लोग कर्म से बाहर हैं—कर्म में विपरीत बुद्धि
है—उनके प्रति उपेक्षा भाव—मध्यस्थ भाव रखी ।
जो कोई विरोधियों के प्रति उपेक्षा भाव रखता है वह
सर्व लोक में विद्वान् है ।

जो भी प्राणी कर्म को छोड़ते—छोड़ने में समर्थ होते
हैं, विचार कर देख, वे सब निरि —मन, वचन,
से हिंसा को छोड़ने वाले हैं ।

जो नर मृतार्थी—खरिद कर्मों के प्रति मुक्तवत्,
धर्मविद और हैं, वे इस दुःख को —हिंसा—
से उत्पन्न खान कर उसे छोड़ते हैं ।

तत्त्वज्ञ ऐसा कहते हैं ।

य परिश्रमेन वा य ज्ञदेयम्वा
इत्यपि साम्ब नमिष्य दोषो
आचारिकमन्यसे

(श्रु० १ अ० ४ व० १)

१४—यदि न ब्रह्मा न कोर्मा से
सम्पन्नोऽपि ते केद् विष्णु
ब्रह्मर्षि पाठ विनियोगद्वया
के केद् सदा नमिष्य कथयि
मय दुष्कृत मन्त्रविहारी जन्
कारकत दुष्कृतोऽपि कथा
कथाम् सम्पन्नोऽपि

११—हे सखे पाषाणवा

दुपकस्य दुपका

परिण्णुदाहरति

इयं कस्य परिण्णाय सम्बन्धी

१२—इह आचार्यजी पण्डित जगिदे

कलामान सौदास पुने सरीर

१३—कहेदि जगन्नाथ

कहेदि जगन्नाथ

१४—कहा कुनइ कहा

सम्बन्धी कलामान

का जगन्नाथदि जगिदे

विनिज कोइ जगिदपमाने

१५—दुष्ट को समझने में कुशल वे सब प्रवादी
—सत्यदर्शी—इस कर्म की " —सब से
जानकर, उसके कर्म की पहिछा—बुद्धि—पतकती हैं ।

१६—आत्मा आत्मना का आकांक्षी धर्मिक पुरुष
आत्मा को अकेली समझ—दूर से भिन्न —
अमीह भाव से करि के तप से जीव करे ।

१७—अपनी आत्मा को कृत करी—पतली करे ।
अपनी आत्मा को जीव करी—सुख करे ।

१८—जिस तरह पुराने सूखे लकड़ों की शीघ्र
जलाती है, उसी तरह आत्मधमादित—राम रहित और
श्रेष्ठ को छोड़ कर सिद्ध की—जीव के कर्म
को प्राप्त हैं ।

१६—इम निष्ठाक्य उपेक्ष्य

दुष्टं न चाप्यनु आगमोक्तं

पुनो पश्चाद् न पश्ये

कोन न पात निष्कर्मार्थं

२०—ये निष्कृता पापेहि कर्मोहि

कर्मिणां ते विवादिता

२१—कदा कश्चिद्विजो नो

वक्षिष्यतिआदिदि वेति

(सु० १ अ० ४ व० ६)

२२—आधीक्य पधीक्य निमीक्य

अदिता पुनर्यथो विवा कवचम

१९—इस मनुष्य-मन को आधुन्य
कर, लोधादि दुःखों के हैं अथवा मविध्य
में, पापी जीव विन्न-विन्न स्थानों में दुःखों का
करते हैं तथा लोक दुःख से रहा है, यह
देख कर, लोधादि पापों का परित्याग कर ।

२०—उपरोक्त बातें कर, जान कर, देख कर
जो पाप कर्मों से निवृत्त हैं वे अनिष्टान्— रिक्त
की से दुः— सुखी कहे गये हैं ।

२१—इसलिए विद्वान् लोधादि से
को सज्जति न करे—न उल्लास्य ।
ऐसा मैं । हूँ ।

२२—सारे पूर्व संयोगों को त्याग एस इन्द्रिय-
संय क्य मान को प्राप्त कर, आपीकृत कर,
निष्पेक्षित कर—सप से आत्मा को उत्तरोत्तर तथा ।

२५—सन्धा बभिवने वरि
 सारह समिध सस्त्रि सवा वप
 दुरधुपरो ममो वीरान्
 बभिवदृक्कवीन विविध
 मन्त्रोक्ति

२६—सह दुरिसे बभिव वरि
 जावाभिमे विवादि
 के हुनाह सङ्कल्प
 बभिव दमयेरधि

२७—विरोहि बभिविज्जोहि
 जावाज्जोवपदिह वाळे
 बभिविज्जोवपने

२३—मुक्तिप्राप्ति और पुरुषों के मार्ग का अनुसरण करना बड़ा कठिन है, अतएव भास और शोभित भाँ सुझा कर और पुरुष मन की अवस्था को हटा, संयम में रहा हो, समितियों से युक्त रहे, विवेक सहित सदा इस मार्ग पर गत रहे।

२४—जो प्रवृत्तियों में वास हुआ कर्मों को पुनरा है, वही और पुरुष समी और अनुकरणीय कहा है।

२५—नेत्रादि इन्द्रियों के योग्य पदार्थों से दूर होकर भी जो मूर्ख विषय-लोभ में गूढ़—प्रवाहित होता है, वह वास्तव में छिन्नवक्त्र नहीं होता। वह संशोभों को पार

अथमिन्द्रियसंयोग
 एतसि अविवाक्यो
 वाक्य कसो अस्ति सि वेति

२५—कस्य अस्ति कुरा पञ्चा
 कस्ये कस्य कुनो सिवा ?

२६—सेह कथाकथि कुत्रे
 कालवीचर
 कथमेवहि कस्य
 केन क्व क्व पोर
 परिवाक्य व दान्क

२७—परिनिर्दिष्ट वाहिरां व सोच
 निवृत्तार्थी क्व अस्तिप्राहि

नहीं कर है और से अ में निमग्न है ।
ऐसे मनुष्य को महात्म की का काम नहीं होता ।
ऐसा मैं कहता हूँ ।

२३—जिसके पूर्व में और पश्चात् में नहीं है, उसकी
मध्य में कहाँसे होगा ?

२४—ओ आरम्भ—हिंसा से है—
है—वही प्रकृति और बुद्ध है ।
जिस से कण्डल, घोर कव और परि-
चाय का भागी होना पड़ता है, देस । उससे
होगा ही , कार्य है ।

२५—इस मृत्युलोक में जो निष्कर्मदर्शी—यो की
और वेदविद्— होता है, वह ब्राह्मस्रोत (हिंसादि)

कमान सज्ज रहस्य
सजो विद्या देवनी

१६—जे कहु नी। नीरु सविता सविता
सवा सवा सज्जसिनी
जाजीवरवा जहाज नीर
सुदेवावा पार्श्व पक्षि
दाहिन नीरु इन सज्जसि
परिचिह्न

१७—साहिवाजी ज्ञान नीरु,
सविता सविता सवा
कमान सज्जसिनी जाजीवरवा
जहाज नीरु सुदेवावा

और सम्यन्तरज्ञोत्त (राग देवादि) का छेदन कर, किये
हय कर्मों को देस पापों से निकल है ।

२९-है । हिं ही जो पुरुष वीर, क्रिया
में समित—साधनेस, विवेक सहित, सदा यत्नवान्,
दृढदर्शी, पापकर्म से निवृत्त और लोक को यथार्थ से
देखनेवाले हैं वे पूर्व पश्चिम, दक्षिण, उत्तर- सारी
दिशाओं में सब में प्रतिष्ठित होते हैं ।

३०-जो वीर हैं, क्रियाओं में संयत हैं, विवेक
सहित हैं, सदा यत्नवान् हैं, दृढदर्शी हैं, से
निवृत्त हैं और लोक को यथार्थ रूप से देखने वाले हैं,
उनके ज्ञान—अनुभव—को हैं ।

किमपि क्वाही १ वासनात् न

विज्य नविदियेयि

(सू० १ अ० ४ व० ४)

तत्त्वदर्शी के संपाधि है या नहीं है ?

तत्त्वदर्शी के संपाधि नहीं होती ऐसा मैं कहता हूँ ।

होमस्तारो

१—जायसी केजायसी होयसि

विजराहुसवि कहुय

कयहुय कयहु केव

विजराहुसवि

हुकसे जाया, वयो से मारसि

कयो से मारसे वयो से दूरे

केव से कयो केव दूरे

२—हे पासा दुधियमिष दुधमो

पहुन विषम कयसि

एव वातस्य बीमिष मयस्य

अधिवामयो

लोकसार

१—इस लोक में, जो भी प्रयोजन के लिए या बिना प्रयोजन पदकम्य जीवों की हिंसा करते हैं, वे इन्हीं जीव-योनिओं में बार-बार
कर मारे जाते हैं।

हिंसक की कामनार्थ—कामनार्थ अति दुःख—तीव्र होती है। इसी कारण वह मारान्त्यवर्ती—जन्म-के चक्र में है, और चूँकि वह जन्म मरण के चक्र में है, अतः वह सुख से दूर है। (जो विषय के पदार्थों से जीवों की प्राप्त नहीं) वह न जन्म मरण के चक्र में होता है, न सुख से दूर।

२—शारी मन्द, अशारी और मूर्त के जीवन को दुःख के पर स्थित, पवन से झिल्लते पवनोन्मुख जल बिन्दु के देखा है।

दूरस्थ कथ्यस्थ बाके ककुब्जमात्रे
 सेन पुनःसेन मूढे विपरिजातधुवेद
 मोदनेन मय्य मरणात् न
 कस्य मोदे पुनो पुनो

१—कस्य परिजातको
 कसारे परिजात मय्य
 कस्य विपरिजातको
 कसारे विपरिजात मय्य

२—ने केर से सामासि
 न सेन
 कदु कथयिजातको
 विदना मय्यस्य बाक्या

मूर्त मनुष्य श्रुत कर्म द्वारा समस्त उत्पन्न
कर्मों से मुक्त हो विपर्यय की—मोहग्रस्त की—
प्राप्त । है । मोह से यह गर्म—जन्म और —की
प्राप्त है और उससे यहाँ फिर पुनः पुनः मोह-
हीन है ।

३—श्री कर्म की है उसे उत्सार आ
स्वप्न होता है, जो परमार्थ की नहीं
उसे उत्सार का नहीं होता ।

४—श्री है, यह कामयोगी का स्थान नहीं

१

विषय-विषय कर देने पर भी उसे स्वीकार न
यह मूर्त की दूसरी है ।

ऊँडा कुलवा पक्षिदेश्य
जागमिचा जागमिचा
जग्याधेयज्वर हि वेदि

१—वायव्य को कसे
मिसे परिनिष्कामने
कल्पनाये पुनो पुनो
जागवी केजागवी कोमलि
जागमवीवी
कस्य नेव जागमवीवी
कल्पनि पाठे परिनिष्कामने
रगई पावेहि कसेहि
आजगने अजगति कल्पनाये

पुरुष परिणाम को विचार—फल को जान—
प्राप्त काममोनों के भी सेवन को आज्ञा न दे और न
स्वयं ही उनका सेवन करे—यही मैं हूँ।

६—इत्यादि विषयों में गूढ़ ज्ञान की मरकादि
शुद्धि की और ले जाये जाते हुए देखी।

इस सत्सार में जो भी प्राणी आरम्भजीवी हैं वे यहाँ
बार-बार दुःखों का अनुस्पर्श—देवन करते हैं।

‘है प्रतक्षणी सन्धासियों में भी आरम्भजीवी
होते हैं।’ ‘है सन्धासी का वेश कर छेन
पर भी सुख विभवाभिलाषी होते हैं। ऐसे मोपी लोग
अशरण को—हिंसा आरंभ आदि को—क मान
पाप कर्मों में पवन करते हैं।

१-अमेगेसि वरुपरिवा मवाह
 से वरुकोरे वरुमावे वरुमावे
 वरुकोमे वरुए वरुने वरुसहे
 वरुयकमे वासवसची वरुिज्जाली
 वरुियवाव वरुयमाली या वे
 वे वरुए

२-कमालकवाव वीसेव सवव वृते
 वरु वायिवाव

३-वह ववा वावव ।

कमलीविवा वे वरुवरवा

६—इस ससार में कितने ही अकैठे चर्या करनेवाले होते हैं । वे अत्यन्त क्रोधी, मानी, मायावी, लोभी, पाप में अत्यन्त रत, बौ, अत्यन्त घृत्, अत्यन्त दुष्ट सकलपवाते, हिता आदि पापों में एव कुकर्मी होने पर भी हम धर्म के लिए किसी रूप से उत्थित हैं — प्रयत्नशील हैं — ऐसा मिथ्या भाग्य करते हैं । “कहीं कोई मुझे कुकर्मी १० देता है” इस वे भयान्क पदों हैं ।

७—इस तीर दीप से भयान्क मृत मनुष्य धर्म को नहीं जानते—नहीं ।

८—हे मनुष्य ! प्रजा—प्राणिसमूह—आर्त—दुःखी हैं । जो कर्मकुशल तथा पापों से अनुपलब्ध हैं

अपिच्छात् पश्चिमुत्तरमाह
 आकृतेन कसुपरिकटं ति
 ति वेति

(कु० १ अ० १ सू० १)

१—आकृती केराकृती लीगति अया-
 रमजीवी पक्षु के अचारमजीवी

१०—कसोपरिकट अओसनाये
 अय सुतीति अयकसु

११—पक्षु अये आरिपदि पक्षेय
 लीट नो अयावय
 आनिधु हुनय पक्षेय साय

और अविद्या से मोह कहते हैं वे —ससार-बन्ध—
में ही अनुपरिवर्त्तन—बार-बार भ्रमण— हैं ।

९—लोक में जो भी अन्तरम्भ-जीवी हैं वे सब ही
प्रकार के जीवों के प्रति नहीं करते हुए जीवन
याप्त हैं ।

१०—यह वे ही कर्मों का बन्ध करता
है ।

यह देखता है कि यही सवि—अवधर—है ।

११—यह नहीं जानी ने कहा है ।

दूस और सुख के विभिन्न कर्मों को जानकर,
संयम में चरित्त हो, न कर ।

१२—पुत्रोऽस्य स यावया
पुत्रो दुर्गमं यवेत्

१३—ये अविर्दिस्र्याये अजययमाये
उो यसे विपुलजय

१४—यस्य समिधा परिभार विधादिय

१५—ये अस्य पापेदि कमेदि ज्याहु ते
आत्मना दुर्गमि इति ज्याहु परि
ते कमे उो अदिवाद्य

१२—सत्कार में पृथक् पृथक् अभिप्राय वाले होते हैं ।

दुःख भी प्रत्येक का भिन्न भिन्न कहल गया है ।

१३—एह हिंसा न । दुःखा, दुःख न बोलता हुआ रहे ।

परिपक्व से स्पर्शित होने पर उन्हें से करे ।

१४—ऐसा संयमी ही पर्यायवाची—
चारित्र्यहीन कहल गया है ।

१५—श्री पाप्मनों में नहीं है उन्हें भी कदाचित् स्पर्श करते हैं । उन स्पर्शों से स्पृष्ट होने पर उन्हें पूर्व कर्मों का फल जान से सहन करे । धीरे पुरुषों ने ऐसा ही कहल है ।

१६—वास्तव्यं क्व क्वस्यचि सन्नुमेदमागच्छ
 इक्षानकवरयस्य इह विष्णुनक्षत्रस्य
 जतिं मनो विदमस्य त्रि वेदि
 (सू० १ अ० ६ पं० १)

१७—जात्यपी वैवाह्यपी कौमसि परिमहा-
 कपी, से कण्य वा बहू वा बहू
 वा बहू वा विद्यमान वा अविद्य-
 मान वा पश्य केन परिमहाकपी

१८—सर्गैश्च कोटिं महात्मनः यवैः

१९—कौमसि च न कोटयः
 स एव सौमसिवाचको

१६—देख—देह के जो इस देखनेवाले
और आत्मा के गुणों में समान करनेवाले, विग्रह और
विरह के लिए मग्न का मार्ग सुना नहीं सदा ।

१७—इस लोक में जो परिग्रही हैं वे अल्प ही या
, अल्प ही या बहुत, सचित्त ही या अचित्त सभी
वस्तुओं का परिग्रह करते हैं ।

१८—यह परिग्रह ही एक-एक परिग्रहिणी के महान्वय
का हेतु है ।

१९—लोकचित्त—परिग्रह—के का चिन्तन
कर । दूर रहनेवाले को कोई मग्न नहीं होता ।

२०—ये सुपञ्चिह्न सुखपीयसि नम्बा
पुरिषा परमपन्नम् विपरिक्कमा

२१—यस्यु नेव वचनेरं सि वेमि

२२—ये सुव च मे अज्जकवच च ये—वचन
सुखो अज्जकमेव

२३—यस विरय अज्जारे वीहराय
विजिह्वय

२४—यसो वदिता पास
अज्जकतो परिज्जय

२०—जो निष्पत्तिही है वह सुप्रति है, वु अपनीत है। यह जानकर है पुरुष। परम चक्षुवाला हो, समय में पराक्रम कर।

२१—ऐसे साधकों में ही ब्रह्मचर्य होता है—ऐसा मैं कहता हूँ।

२२—मैंने सुना है और अनुभव भी किया है कि बन्ध और मोक्ष आत्मा ही है।

२३—इस परिग्रह से विरक्त अनगार याज्ञजीवन पिति रही।

२४—को धर्म से बाहर देख, माय से समय में विचलन कर।

२५—एक बोन सन्य जनुवगक्षिआसि
वि वेमि

(सु० १ अ० २ क० २)

२६—आपसी केवावसी कोवसि अपदि
आहापसी एवसु केव अपदिआहावसी

२७—सुवा नई मेरावी पक्षिवाव मिसा-
मिवा

२८—समिवाव कने आरिपई पवेव

२९—समिवाव मय सवी कोविय
एवममव सवी हुअमेवम मयव
एववा वेमि यो विहियव वीरिय

२५—इस मौन का अच्छी तरह पालन कर—ऐसा मैं करता हूँ।

२६—लोक में जो अपरिग्रही हैं वे (अल्प या बहु, अणु या स्थूल, सञ्चित या अञ्चित, किसी वस्तु का परिग्रह नहीं करते)।

२७—मेघादी पुष्प भी की सुन, जयवा पक्षियों की वाणी की सुन (परिग्रह का त्याग करे)।

२८—आर्यों ने मैं धर्म कहा है।

२९—जिस यहाँ मैंने कर्मों की सचि की दीग किया है, उसी कर्म-सन्धि का दीग होना कठिन है।

अतः मैं अपने धर्म का गोपन न कर।

१०—ये पुस्तुआई नो पञ्चानिवाई
 के पुस्तुआई पञ्चानिवाई
 के नो पुस्तुआई नो पञ्चानिवाई

११—येअभि तादिसिए सिवा के परिजाप
 औगमनेसयदि कव सिवाप
 हुनिवा पवइव

१२—क आवाकजी पदिए अजिहे
 पुजावरराव बकमावे सवासीक
 सुयेहाप हुनिवा अवे अकामे
 बकमे

३०—साधक तीन तरह के होते हैं

१—जो पहले उत्थित हो बाद में पीछे
ताकनेवाले नहीं होते ।

२—जो पहले उत्थित हो बाद में ताकनेवाले
होते हैं ।

३—जो पहले उत्थित नहीं होते, और न
बाद में पीछे ताकने वाले होते हैं ।

३१—जो लोक का परिचय कर पुन इसकी इच्छा
करते हैं, वे गुरुओं के शिष्य हैं ।

युनि में वह ज्ञान से कहा है ।

३२—आत्मकामी पण्डित निस्नेह—निस्पृह—ही पूर्व
और अपर रात्रि में यत्नपूर्वक ओल की सम्प्रेषा करता
है । लाभालाभ की अच्छी तरह चुन, व्यकाम और
रहित बन ।

३३—इमेन येन कुम्भदि किं ते
कुम्भेन कम्पनी कुम्भदि कम्भ
कुम्भ

३४—अदित्य कुम्भेदि परिष्ठापितो
मासिह
युग ह्वाते गम्भास्तु रज्ज्वा
अदित्य येन युक्ता कम्पति वा
कम्पति वा

३५—ये ह्वाते संपिष्टादे हुनी
जम्भस्तुष्टिगुह्येष्टान्ते इव कम्प
परिष्ठाप सन्पसो ते व हिंस्र
सम्पद्नी नो पम्पद्

३३—आभ्यन्तर उद्धृष्ट के साथ ही युद्ध कर,
बाह्य के युद्ध से तुम्हें क्या लाभ ?

आत्मयुद्ध के योग्य सामग्रो का मिलना निश्चय ही
सुलभ है ।

३४—यहाँ कुशल पुरुषों ने जिस प्रकार परिष्ठा—
विवेक—वतलाया है, उसमें कर ।

से व्युत्पन्न मूर्ख गर्भादि में भ्रमण है ।

जिन-व्रवचन में ही कहा गया है कृपादि में अथवा
हिंसादि में आसक्त होने से पतन होता है ।

३५—जो को का दृष्टि से देखता हुआ
मुक्ति पथ में चला रहता है, वही अल्प मुनि है ।

सर्व प्रकार से कर्मों के स्वरूप को जानकर वह हिंसा
नहीं करता, संयम रखता है और घृष्टवा नहीं करता ।

३१—अथैवमानी पश्येत् साय दध्यायसी
 वारये कथय सम्बन्धोद
 दध्यायसी विदिसम्बन्धो
 विदिसम्बन्धोद अथ दध्याय

३२—ये सन्तु सम्बन्धसम्बन्धसम्बन्धो
 सम्बन्धो अथ दध्याय
 उ नो कथोसी

३३—अथैवमानी पश्येत् साय दध्यायसी
 दध्याय
 अथैवमानी पश्येत् उ अथैवमानी
 दध्याय

३६—प्रत्येक प्राणी के सुख को हुआ मोहानिलापी पुरुष में किसी भी पाप कर्म का आरंभ नहीं करता ।

वह केवल आत्ममुक्ति होता है, मोह से विपरीत पिशा में नहीं जाता, आरंभ से सदासीन रहता है और शिष्टों में युद्ध नहीं होता ।

३७—वह सदाभी सर्व से, सर्वत्र प्रका से, समन्वित आत्मा द्वारा अकारणीय पाप कर्म नहीं ।

३८—जिसके सम्यक्त्व जानो, उनके मीन को भी जानो ।

जिसके मीन जानो, उसके सम्यक्त्व को भी जानो ।

३६—न इमं सप्तकं विदितेहिं नदिन-
मायेहिं गुणवत्तयेहिं नकसमाभायेहिं
नकसोहिं गाणान्मयैहिं

३७—हुवी मीनं सभावाय हुवे सपेरा
नमः कुरु देवसि वीर्यं सन्मयसिनी
यस्य ओदन्तरे हुवी, विन्दे हुवे
विदय विवादिप विवेयि

(सु० १ अ० २ क० १)

३८—यमाम्बुजाय हुवाम्बुजाय हुवाय
हुवाम्बुजाय नमः नमिषत्तस्य
विनक्तो

६९—सिखिठ, विम्वारवाटी, पञ्जचारी,
और घर में खनेवाले मनुष्यों द्वारा यह नहीं है।

७०—मुनि मौन को शरीर को धुने—कृपा
करे। सम्यक्वृत्तियों की वीर प्राप्त और स्वाच्छा का
सिध्द करते हैं।

समुद्र को तिरनेवाला ऐसा मुनि ही सीम,
मृत तथा निरक्त गया है—देसा में कहता है।

७१—प्रान्ताप्रान्त में अकेले निवसते हुए
मिद का निहार दुर्यस्त और दुष्परत्न होता है।

४९—बभ्रुवाणि यो जुवा कुपति
मानवा

५०—कनकनाथे व वरे गहवा मोहेय
हृन्मय

५१—कपादा वरे जुमो जुमो
हृत्पन्मया वभावधो वपासधो

५२—का ते वा होव
का कुम्भकस वृत्तव

५३—वसिष्ठिर कपुचीर वसुदेवकारे
वसन्धी वसिष्ठेयै

४२—कई मनुष्य वचन भात्र से कुपित हो जाते हैं।

४३—अभिमान मनुष्य महामोह से विषिक शून्य होता है।

४४— श्री और मौलाना मनुष्य के सामने बार-बार अनेक दुरतिक्रम बाधाएँ उपस्थित होती हैं।

४५—ऐसा तुम्हें न हो
यह काली की दृष्टि है।

४६—शिष्य तद्वदृष्टि हो—गुरु की दृष्टि से चले।
उसकी निस्संगता का अनुसरण करे। उसे रसे।
उसमें पूर्ण रसे। उसके पास रहे।

४७—अथ विहारी विचरिवाई पथ
विचरिवाई पथिवाहिरे वासिय पाथे
पथिकमा

४८—हे अमिलकममाथे पथिकममाथे
सङ्गममाथे पसासेमाथे विचिवाहमाथे
संयोजकमाथे

४९—काना सुनसमिन्ध रीयको काथ
सङ्गस सङ्गुपिना वासिवा
पाना कानसि इहकोमा वेपथ
विवापथि

अ वासिपथि कान व

४७—वह यतनापूर्वक विहार करे। कलते
उसमें ही चित्त रखे। वह पत्र पर दृष्टि हुआ,
को देखता— —हुआ चले।

४८—वह , सकोच, विनिवर्तन
प्रमार्जनादि कार्य से करे।

४९—यदि कभी गुण और समितियों से युक्त संयमी
की गमन आदि क्रिया के द्वारा के कोई
प्राणी या व्यक्ता जानें प्राप्त होता है तो कर्म
भव में अनुमत्त होकर क्या हो है।

यदि कर्म आवृत्ति पूर्वक—सकल्य पूर्वक किया हुआ
हो तो उसे प्रायदि द्वारा दूर चाहिए।

परिज्याय विवेकमेऽ एव से
अप्यवाक्य विवेकं विदुः वैयसी

१०—हे पदूष्यमी पदूषपरिज्याये एवसे
समिप सदिप सवाक्य, कदा
विप्यदिकेन अप्याय विवेकं जपो
करिस्वाः १ कदा से परमाराभी
वाभी कोमवि ह्यीभी सुपिपा
ह कदा वीक्य

११—अप्यादिक्याये गाम्यवन्तोर्हि अवि
मिप्यवस्य अवि कोमोपरिप
कुमा अवि कदा कदा कदा
अवि गाम्यवन्तोर्हि सुपिपिपा अवि

इस पूर्वक किए हुए प्रायश्चित्त का ज्ञानी
गुण कीर्तन करते हैं।

५०—यह पशुधर्मी, पक्षिकानी, व, समित,
गुणवान, सदा स्त्री को देखकर आत्मा में दि
करे—यह मेरा क्या करेगी ? इस लोक
में निवर्त्त—महामातीभन की वस्तु हैं। मुनि
ने ऐसा है।

५१—कदाचित् समयही प्राप्तवर्त्त— स
पीकित हो तो वह निर्वर्त्त—नित्यस्व—आहार करे।
आहार की को घटा दे। में अर्क हो।

आहार भुक्तिविद्या जनि कर
इसीसु मम

११—पुन्य दत्ता पन्था कासा पुन्य कासा
पन्था दत्ता इन्धेर कन्धासगन्धरा
मयति पतिवेदाय आगमिन्ना
आत्मविद्या जनासेवयाय हि मेनि

१२—हे भी कादिर भी पासमिय
भी आत्म भी कर किरिय
कह्युते अन्धकार सन्धे परिपन्था
सवापाय एव मोन सपसुवाधि-
क्यासि हि मेनि

(सु=१ अ १ व ४)

एक ग्राम से दूसरे ग्राम । का सर्वथा
विच्छेद कर दे। स्त्री में मन को न लगावे।

५२—यह है स्वर्ग—भोग। पहले
—भोग है । ये भोग बलिव और मोह के
हेतु हैं। इसे अच्छी तरह देख—जान—आत्मा की
भोग-सेवन से दूर रहने की शिक्षा दे। ऐसा मैं
हूँ।

५३—यह स्त्री कथा न करे, किशोरों की ओर न
लाके, उनके साथ एकत्र बात न करे, उनके
न करे। उनके चित्त को आकर्षित करने के लिए
न करे। वह से गुप्त रह को
सबुत रख से सदा दूर रहे। वह इस भोग—
ब्रह्मचर्य की करे। ऐसा मैं कहता हूँ।

१४—विदिशि च समावन्तेन अप्यानेन
नो क्वचिदप्यर्हति

१५—कस्यैव कस्य नोऽर्हति न विनोहि
नोऽर्हति

१६—सिवा को अमुपचरति
असिवा को अमुपचरति
अमुपचरान्तेर्हि अमुपचरमाने
क्व न विनिश्चये ?

१७—सन्निवस्य न समनुवस्य सपत्न्य
मातुस्य सन्निवसि सन्निवस्य
कथा सन्निवस्य इति

५४—सम्बन्ध-मूल्य आस्था द्वारा समाधि प्राप्त नहीं की जा सकती ।

५५—यही सत्य है, निश्चय है जो जिनों द्वारा प्रवेदित है—कथित है ।

५६—कई गुरुत्व दृष्टि का अनुसरण करते हैं ।
कई गुरुवाणी भी दृष्टि का अनुसरण करते हैं । अनुसरण न करनेवाला, अनुसरण करनेवालों के बीच रह कैसे निर्देय की प्राप्ति करेगा ?

५७—अज्ञान और अन्धता तब प्रमज्जित होने वाले समसद्वार पुरुष के "समय—जिन कथित धर्म—ही सत्य है" ऐसी भ्रमता होती है ।

असिर्विदि सम्प्रदायस्य वाचा
असमिवा होइ

असमिर्विदि सम्प्रदायस्य वाचा
समिवा होइ

असमिर्विदि सम्प्रदायस्य वाचा
असमिवा होइ

समिर्विदि सम्प्रदायस्य समिवा
वा असमिवा वा समिवा होइ
जोइए

असमिर्विदि सम्प्रदायस्य समिवा
वा असमिवा वा असमिवा होइ
जोइए

"समय—जिन कथित धर्म—ही हैं"—आत्म
में ऐसा माननेवाले की कदाचित् वाद में
हो जाती है।

"—जिन कथित धर्म—ही सत्य हैं"
में ऐसा न माननेवाले की कदाचित् वाद में
नहीं रहती"— हो जाती है।

"समय—जिन कथित धर्म—ही सत्य हैं" में
ऐसा न माननेवाले की कदाचित् वाद में
नहीं रहती अ हो जाती है।

"—जिन कथित धर्म—ही सत्य हैं" ऐसा
माननेवाले के अथवा
से हो लेते हैं।

"समय—जिन कथित धर्म—ही सत्य हैं" ऐसा न
माननेवाले के सम्बन्ध अथवा तत्त्व असम्बन्ध विचार
के यह ही होते हैं।

१०—उत्तेरमासी ककुत्तेरमास वृषा-
 उत्तेरदि सप्तमिषा, इत्येवं तस्य
 तृती कोटिषो जपः ते सप्तमिषा
 दिवसः च सप्तमिषासह, इत्यपि
 वाक्यभावे अष्टाश्विनो जपः सप्तमिषा

११—द्विषति नाम सन्नेह च ईदमिति
 जपति, द्विषति नाम सन्नेह
 च जपः सप्तमिषासह सप्तमिषा, द्विषति
 नाम सन्नेह च परिषादेयमिति
 जपति, च च परिषादेयमिति
 जपति, च जपः सप्तमिषासह सप्तमिषा,

५८—सत्यदर्शी सत्यप्रस्तुत से कहे - कू रूप
से विचार कर, इस सत्य में प्रवृत्ति से ही कर्म का
नाश होता है ।

छात्र और शिक्षक की गति को श्री गुरु देव
अपनी को इस वाक्य भाव में समर्पित न
कर ।

५९—हे पुत्र ! जिसने तुम्हारे माते की । । है,
विचार कर वह भी तेरे जैसा ही तुम दुःख का अनुभव
करनेवाला प्राणी है, जिस पर हुकुमत करने की इच्छा
है विचार कर, वह भी तेरे जैसा ही प्राणी है, जिसने
दुःख देने का विचार करता है, विचार कर, वह तेरे जैसा
ही प्राणी है, जिसने अपने कष्ट में रहने की ।
है विचार कर, वह तेरे जैसा ही प्राणी है, जिसके प्राण
लेने की । । है, नि । कर वह तेरे जैसा ही
है ।

जबू केनचिमुझीची
कहा न हवा यदि बाबर

अनुसन्धेयमानालेन न हयन
आधिकार

१—जे आचा से विज्ञाया
से विज्ञाया से आचा
केन विज्ञाया से आचा
व अनुसन्धेयमानालेन

११—कहा आचार्य सविज्ञा
परिज्ञा विज्ञादि दि केन

सब पुरुष सब विकर रसवा हुआ जीवन
विस्तार है। वह न को है और न किसी को
बाध करता है।

जो हिंसा है उसका फल पीठे छिसे ही मींगला
पड़ता है, अतः वह किसी भी प्राणी की हिंसा करने की
कामना न करे।

६०—जो आत्मा है वह मैं है। जो विहारा है,
वह आत्मा है। जिससे आत्मा है, वह आत्मा है।
आत्मन के सामर्थ्य के बाध ही आत्मा की प्रतीति सिद्ध
होती है।

६१—जो व्यक्ति आत्मकदी है उसी का पराजय—
समनानुष्ठान सन्वत् कदा गया है। ऐसा मैं हूँ।

११—अथायतन पदे सोपानाना

अथायतन को विष्णुपुत्रा

पद से या होय

एव कृतकला इत्यत्र

वर्णितं कर्तुमीय कर्तुरात्मनो

कलायै वर्णितेयमेव अभिव्यक्त

अथयतन

१२—अथविष्णु पद विराजयमानाय

से नमः अथविष्णवे

१३—अथायतन अथायतन अभिव्यक्ता

६२—कई में सखमी होते हैं। कई में
निषखमी होते हैं। यह तोरा न हो।

यह पुष्प का दर्शन है . गुरु की दृष्टि से
हैबनेवाला, गुरु की निराली दृष्टि से जानने . गुरु
को आगे रखने . गुरु में पूर्ण रखने
और सदा गुरु के समीप रहने . शिष्यों को
जीत कर दण्ड करना है।

६३—जो अपने विषय में महान् है, तब मन
दृष्टि से छरा भी नहीं वह किसी से अपराधित
विषय निराश्रयता में—सब में
आधार पर रहने में—समर्थ होता है।

६४—से को जान्यो। कबनसे कबन को
जानो।

३१—सहस्रमात्राए परवाकरनिज अनेसि
वा कविप सुवा

३२—विदेस जाइलहुंमना मेहाजी
हुपकिहेहिवा सज्जनो सज्जनका
सज्ज सज्जनिकाव

३३—सह जाण्य परिज्जाए अकलीने
हुये जाण्यो परिज्जाए

३४—निद्रीकटी परि जाण्येन कवा
परज्जयेउवाहि नि केमि

३५—सु सोपा ओइ सोपा
तिरिख सोपा विवाहिना ।

अनुसार
६५—अपनी बुद्धि से अनुभवियों के से अ
दूसरों से सुनकर ही स है।

६६—मे सर्व से, सर्वतो माय से, अच्छी
तथ्य जान देने पर का न करे।

६७—इस संसार में ही आराम है, यह
मुमुक्षु इन्द्रियों को बन्ध कर, में तल्लीन
है, करे।

६८—निष्ठावान् आत्माधी तथ्य के अनुसार
करे।

६९— ' स्रोत है, अक स्रोत है, तिर्यक्
मे भी स्रोत है। देस। इन पाप-प्रवृत्तियों की ही स्रोत

यस्य सोमो निष्कपङ्कजः
तेहि कपयि पातय ॥

७०—आयुः तु वेदस्य इव विरमिष्य
वेदवी

७१—निष्कपङ्कजो सोमो निष्कपङ्कजः
अकम्प्यो आयुः पातय पवित्राय
आयुर्वरुण

७२—इह आयुः इह पवित्राय
अकम्प्यो आयुर्वरुणस्य आयुः
निष्कपङ्कजः

कहा गया है जिससे आत्मा के कर्मों का संग—बध होता है ।

७०—आर्षों की देखकर वेदक इससे दूर होता है ।

७१—श्रीत की रोकने के लिए जो निष्क्रमण है, वह महामुख्य अकर्मा ही सब जानने देखने तथा परमार्थ की देख मोक्षों की छा छा नहीं ।

७२—वह वाग्वि-गति की जान कर, भरण के मार्ग को पार कर, मोक्ष को पा लेता है ।

७१—सम्मे सरा निषङ्गनि

तत्काल काल न विपन्न

माद लाल न बाहिरा

लोप जगत्प्राप्तता लोपनी

ले न हीरे न हस्ते न कई

न हस्ते न चरसे न परिमल्ले

न किन्दे न बीडे न डोदिय

न हाकिरे न मुनिपले

न सुरमिलने न सुरमिलने

न विसे न लघुप न फसाप

न जमिले न लहुरे न फल्लसे

न मल्ल न मल्ल न लघुप

न लले न लिरे न लुपले

४३—उस का कर्म करने में सारे निष्ठा
से खाते— हो खाते हैं। यहाँ यहाँ की पहुँच
और न कुछ छोटे कर पाती है। कर्म-मल
रहित केवल चैतन्य ही उस का होता है।

मुक्त आत्मा न दीर्घ है, न , न दुःख—यौल। वह
न त्रिकाल है, न शरीर, न भङ्गलाकार वह न है,
न नील, न , न पीला और न ही। वह न
स्थानि है, न दूरान्ति है। वह न विकृत है, न
कबूला, न कबूला, न और न मसूर। वह न कर्मश
ही, न मनु। वह न माली है, न । वह न शीत है न
उष्ण। वह न तिष्ठति है, न रुध।

न कोक न कोरे न छवि
 न इली न पुरिछे न कज्जरा
 परिछे छाने कवमा न विज्जप
 ककली सदा
 कपलस्य पर्व जल्लि
 के न कोरे न कोरे न कोरे न कोरे
 न कोरे हल्लेन छि केनि ।

(कु० १ अ० १७० ३)

वह न शरीर धारी है, न पुनर्जन्मा, न आसक्त ।

वह न श्री है, न पुण्य, न मनुष्यक ।

वह ज्ञाता है, वह परिच्छाता है, उसके लिए कोई
उपमा नहीं ।

■ अकथी सदा है ।

वह अपद है कृपन लज्जीकर के लिए कोई पद—
वाचक शब्द नहीं । वह शब्द क्य नहीं, क्य क्य नहीं,
गन्ध क्य नहीं, रस क्य नहीं, स्पर्श क्य नहीं । वह
ऐसा कुछ भी नहीं । ऐसा मैं कहता हूँ ।

बुध

१—बोध उदिकमलने

दम कोमलत आनिवा

पाईन पचीन दाहिन करीन

आइलने विमल किहू देमयी

२—से बहिष्यु वा अनुद्विष्यु वा दुष्क-

समायेदु नयेवद सति विदु कबलम

किन्नाय सीन अन्धविष महविष

कायविष अन्धविष

३—सन्नेहि वापान सन्नेहि सुपान

सन्नेहि बीपान सन्नेहि सदाप

कनुवीद निरुदु कम्पपाइनिहउआ

धृत

१—रागाद्वेष हीन समदर्शि तत् पुरुष, लोक पर
—प्राणियों पर—दया रि १ पूर्व, पश्चिम, दक्षिण,
दिशा में धर्म कहे, धर्म का विभाग करे, धर्म का कोर्तन
करे।

२—छरित्त हों अथवा अनुचित्त सुनने की
वाली को भयान्त का न कर वह शान्ति, विरति,
उपशम, निर्घाण, शीघ्र, दे, मार्गव और का
उपदेश दे।

३—मिथु सर्व प्राणियों की, सर्व मूर्तों की, सर्व सत्त्वों
की, सर्व की विचार कर धर्म का कथन करे।

४—अथर्व विष्णु कर्मणास्त्वामाभे
 नो अथर्व आराधना नो पर
 आराधना
 नो अथर्व पत्न्यश्च भूयश्च जीवाश्च
 अथर्व आराधना

५—हे अथर्वान् अथर्वानामे
 कर्मणास्त्वामाभे नो अथर्व
 अथर्व अथर्व हे हीरे अथर्वाने
 नो हे अथर्व अथर्व अथर्वाने

(अ० १ अ० २ अ० ३)

४—विचार कर धर्म ककन हुआ भिद अपनी
न करे, न दूसरे की आ करे। यह
प्राणी, मृत, जीव और सत्व की एना न करे।

५—यह न करनेवाला और
न करनेवाला महामुनि लखी कर होता है
जिस , मृत, जीव और सत्वा लिए
असदीन होय।

विशेषो

१—इमेतिहास आचार्योचरे नो मुनिछन्दे
भवति

२—ये इह आचार्योचरे अमुकमात्रा
इह नये आचार्योचरे इहो नये
समस्तमात्राया अमुकमात्रा
आचार्योचरे अमुकमात्रा विद्यमानि
समस्तमात्रा अमुकमात्रा विद्यमानि
समस्तमात्रा अमुकमात्रा विद्यमानि
समस्तमात्रा अमुकमात्रा विद्यमानि
समस्तमात्रा अमुकमात्रा विद्यमानि
समस्तमात्रा अमुकमात्रा विद्यमानि

विमोक्ष

१—इस संसार में कड़वी को आचारगोचर अच्छी तरह घात नहीं होता ।

२—वे इस संसार में आरम्भाधी हो दूसरी का अनुसरण करते हुए कहते हैं "प्राप्ति का हनन करो ।" इस तरह वे घात करवाते हैं । हिंसा करते हुए का अनुमोदन करते हैं । अथवा विना दिया ग्रहण करते—चोरी करते हैं । अथवा इस तरह की बात करते हैं "लोक है, लोक नहीं है, लोक प्रुव है, लोक प्रुव नहीं है, लोक आदि है, लोक आदि नहीं है, लोक वसित है

सुखमेति वा दुःखमेति वा कष्टमेति
वा पापमेति वा सद्गुणेति वा अज्ञा-
दुष्टेति वा सिद्धिमेति वा असिद्धिमेति वा
निरयेति वा अनिरयेति वा ।

१-अस्मिन् विपश्चिन्तना आत्मार्थं वक्ष्य
फलहेमाणा इत्यपि आत्मं अकलात्

४-एतं वेदितं नो सुखं न चाप्यत्र दुःखं नो
सुखं नो दुःखं न च

१-ये अस्मिन् अस्मिन् अस्मिन् आत्मपत्तेन
आत्मार्थं पापार्थं कष्टार्थं सुखं
अज्ञानेन चिन्तयन्ति

लोक 'वसित है, यह सुख है, यह दुष्कृत है,
यह पुण्य है, यह पाप है, यह साम्य है, यह असाध्य है,
सिद्धि है, सिद्धि नहीं है, है, नरक नहीं है ।'

४—इस के विभिन्न मतियाँ मेरा धर्म (ही
सत्य है) ऐसी करते हैं । पर उनके कथन
अकस्मात् हैं यह जानो ।

४—इस तरह । कहा हुआ और प्रकृष्ट किया
हुआ धर्म सु त्त और सु प्रकृष्ट धर्म नहीं होता ।

५—अगर धर्म कहे वो जैसा ने
देसकर कहा है वैसा कहे अथवा वचनगोचर
को गुप्त रखे—भीन रहे ।

१—सम्पन्न सम्पन्न पाव सम्पन्न कथा
कथा सदा सदा दियो विवाहिय

२—गामे वा जहुवा रणे
मेव गामे मेव रणे कम्ममाधान
पवेइ पादनेव महुवा

८—जाया विनि कदादिवा मेहु इमे
जायदिवा सलुक्कमात्ता सलुदिवा

९—मे निजुवा पावेहि कमेहि
जन्मिवात्ता मे विवादिवा

१०—सु अह विरिय विसाहु सम्पन्नो
सम्पन्नदि न न पाडियत्त
वीरहि कम्मसामरमे न

६— पाप है। सखी को मैं अतिरुमण
कर हूँ—यही मेरा ध्येय है।

७—गतिमान् माहन् ने है धर्म ग्राम में भी
हो है और में भी। धर्म न ग्राम में होता
है और न में (कह आत्मा में होता है) यह
समझो।

८—यस्य तीन कहे गये हैं जिनमें 'समुद्र ही
समुत्थित होते हैं।

९—जो पाप कर्मों से निवृत्त है, वे नियन्त्रित रहते
गये हैं।

१०—सखी, नीली, —इन सब विधाओं में
कर्म-समाप्त से प्रत्येक जीव को दुःख होता है।

११—त परिष्कार वेदाधी नैव स्य कर्हि
 कर्हि इह समारम्भेन नैवने
 कर्हि कर्हि इह समारम्भेन
 नैवने कर्हि कर्हि इह समार-
 म्भेन सत्युत्तरेण

१२—वेदोक्तो कर्हि कर्हि इह
 समारम्भेन वेदोक्तो कर्हि कर्हि

१३—त परिष्कार वेदाधी त वा इह
 कर्हि वा इह वा इह कर्हि इह
 समारम्भेन सत्युत्तरेण

(सू० १ अ० ८ उ० १)

११—यह जानकर मेघावी इन पृथ्वीकायादिक
के प्रति दण्डसमारम्भ न करे दूसरे से इन
के प्रति दण्डसमारम्भ न करावे और यदि कोई इन
जीवों के प्रति दण्डसमारम्भ ही तो उसे
न समझे ।

१२—यदि कोई अन्य व्यक्ति भी इन जीवों के प्रति
दण्डसमारम्भ करता है तो उससे भी इन अपिणत
हैं ।

१३—इस कर बुद्धिमान् जीवों के प्रति
उस दण्ड अथवा अन्य —किसी भी से
समारम्भ न करे । ऐसा मैं कहता हूँ ।

१४—अभियोगेन वचसाभियोगो ह्युक्तमात्रा
 सप्तद्विधा सप्तुवा वेदाधी वचन
 पश्चिमाभि विद्याभिना

१५—अभिवाच्य वचो आदिष्वेहि पक्षेऽप्य

१६—ते अक्षरकक्षमात्रा अक्षरवाक्यमात्रा
 अपरिगृह्यमात्रा नो परिगृह्यमात्रा
 सन्नामनि च न लोपसि

१७—निदानं क्व पाथेहि पाथ क्व
 अक्षरमात्रे

१४—बुद्ध पुरुषों के सुन और कई
पुद्गलमान में क्या मैं समझूँ हूँ, मैं अवस्थित
हूँ ।

१५—आर्यों ने से—ए रहित ही धर्म
है ।

१६—जो निराकाशी हैं, जो अतिपात—हिंसा—मर्दा
करते, जो अपरिग्रही हैं वे सारे लोक में किसी का
परिग्रह नहीं करते ।

१७—ये प्राणियों के प्रति —हिंसा—का
त्यागक, किसी का पाप कर्म नहीं करते ।

१४—यसिष्मन्नेव वयसावियो हसुम्भमाभा
 ससुविषा ससुवा सेहावी वयम
 वसिषाव सिद्धाविषा

१५—समिवाह कमे वारिर्था पवेत्य

१६—हे अन्वर्धकमाभा अन्वर्धमाभा
 अपरिमर्देमाना गो परिमर्दावही
 सन्वावसि च वं होयसि

१७—विद्याव इह पावेर्हि पाव कम्भ
 अन्वर्धमाभा

विमोह

२६७

१३—बुद्ध पुरुषों के सुन और कई
पुत्रिमान न क्व में सद्बुद्ध ही, संयम में अवस्थित
हय हैं ।

१४—आर्यों ने से—ए रहित ही धर्म
है ।

१५—जो निराकाशी हैं, जो और —हिंसा—नहीं
करते, जो अपात्रिणी हैं वे सारे लोक में किसी का
परिग्रह नहीं करते ।

१७—वे प्राणियों के प्रति दण्ड—हिंसा—का
, किसी का पाप कर्म नहीं करते ।

१८—आहारोपचया देशा परीक्षा
पम्पुदा

१९—पासाह को धर्मविधि परिनिजाय-
मानेहि ओय

२०—दम दमद के समिदाय सत्वात्त
केयले

२१—छे निपहु काकले बकले
सायले ककले बिजकले समबले
परिमाह अमयावमाये काठेपुहा
अपकिने हुइयो दिवा निवाह
(सू० १ अ० ८ सू० १)

१८—यह वाह्य से उपचित—गुट—शरीर परिपहों
के सम्मुख गुर होता है।

१९—वेद कई सर्व इन्द्रियों से गलम होने पर भी
ओजस्वी होते हैं।

२०—ओ सखियाँ— —और का सेवक
है वह दया का है।

२१— को जाननेवाला, कल को जाननेवाला,
को जाननेवाला, क्षम को जाननेवाला, विनय को
जाननेवाला, - को जाननेवाला भिड़ पा
में नहीं हुआ व सखित हो निदान
न हुआ राम और देव का छेदन कर आगे
है।

२९—अस्य च निष्कृष्टस्य एव मयद् उक्तो
 कण्डुः लक्ष्मसि वाङ्मह्यसि
 सीरपास्य अदिवादिचय्य से नहुन
 सन्ध्यासन्ध्यामयकमायेन अप्यायेन
 निःकण्डुनाय वाङ्मे उच्यते
 ॥ ४ ॥ येन कौमे निहमाद ।
 अत्राणि अस्य वाङ्परिवाय सेऽपि
 अत्र विनति कारय इत्येव
 विमोहायुक्तं द्विजं सुदं समनिष्ठेन
 वाङ्मुनायि वि वेदि ।

(सू० १ अ० ८ व० ४)

३०—अस्य च निष्कृष्टस्य एव मयद् —
 से विनायि च कण्डुः लक्ष्मसि

२२—जिस भिक्षु को ऐसा हो कि मैं निश्चय ही उप-
सर्ग से बिर गया हूँ और श्रोत-स्पर्श को सहन करने में
समर्थ नहीं हूँ, वह समयों अपने समस्त ज्ञानबल से उस
को न करता हुआ, अपने को समय में अवस्थित
करे। (अगर उपसर्ग से बचने का कोई उपाय नजर
नहीं आये तो) तपस्वी के लिए श्रेय है कि वह कोई
वेहासनादि मरण स्वीकार करे। निश्चय ही यह
मरण भी उस साधक के लिए पर्याप्त—समय-प्राप्त
मरण है। इस मरण में भी वह कर्म का अल
कलेबल्ला होता है। यह मरण भी नौह रहित व्यक्तियों
का न रह है। यह द्विकारी है, सुलकारी
है, क्षम है, नि-श्रेयस है और अनुपम—पर जन्म में
शुभ फल देनेवाला है।

२३—जिस भिक्षु को ऐसा हो कि मैं इस समय
गलन हो गया हूँ, अनुपम से समय पालने के लिए

समय इस सरीखे अनुपुष्पेन
 परिबद्धितर से अनुपुष्पेन आहार
 करहिता । अनुपुष्पेन आहार
 करहिता कदापि पवनपू किया
 समाहितनै पञ्चमपदी कुर
 मिकरु ममिच्छितुनै, अनुपुष्पि-
 शिवा गाय वा कन्द वा कंद
 वा कन्द वा कन्द वा कन्द
 वा दोनदुद वा आकर वा आचय
 वा सन्निवैद वा विगय वा
 रायद्वि वा कदा आर्या ।
 कदा आर्या से कदावा
 कदा कदाकिया । कदा नव

इस शरीर को पवित्र करने में असमर्थ हैं, वह अनुक्रम से आहार को घटावे, और ऐसा करके कषायों को क्षीण करे। फिर समाहित हो फलक की रीति स्थिर चित्त हो मृत्यु के लिए प्रस्तुत होकर शरीर-त्याग करे। वह भ्राम अथवा नार, शेट अथवा कर्वट, मङ्ग अथवा , द्रोणमुक्ष अथवा आकर, आश्रम अथवा सन्निवेश, निगम अथवा राजधानी में प्रवेश कर तृणों की याचना करे। तृणों की याचना करके वह समुद्र समुद्र छोड़कर एकान्त में जाय।

कचसिद्धा कचडि कचपाणि कच
 पीर कचहरि कचोष्ठे कचो-
 दय कचुतिमन्त्रमन्त्रमन्त्रमन्त्रमन्त्र-
 मन्त्रमन्त्र पञ्चोदय २ पञ्चमन्त्र २
 मन्त्र कचरिणा । मन्त्र कचरिणा
 कचडि कचर इत्यदि कृत्वा ।

४ कच कचपाणि कचरिणा
 कचपाणि कचपाणि कचपाणि
 कचपाणि कचर कचर कचर
 कचपाणि कचपाणि कचपाणि
 कचपाणि कचर कचर कचर ।
 कचपाणि कच कचपरिणाम कच
 कच कचपरिणाम ।

एकान्त में अम्हों से रहित, प्राणियों से रहित, वीजों से रहित, हरित से रहित, ओस से रहित, जल से रहित, कीड़ी मगर, लीकन फूलन—काई, मिट्टी और मकड़ी के जालों से रहित को अच्छी देखकर उसी उस स्थान का परिमार्जन कर दुनों की । दुनों को हि वहाँ उस शक्ति करे ।

सत्त्ववादी, औपस्थी, ससार से उत्तीर्ण, कथा का व्यापी, पदार्थों को जाननेवाला और से सुक्त मिथु इस कर्ममग्नुर शरीर के का त्याग करे, नाना के परिपह-उपसर्गों की सहन हुआ तथा भगवद् कवित्त वाली में रि हुआ, इस सत्य, मैत्र—दुश्चीर्ण—मरण को अपनावे । निश्चय ही यह मरण भी उस सात्त्विक के लिए काल पर्यायि—प्राप्त है । इस मरण में भी वह सात्त्विक कर्म का करनेवाला होता है ।

इन्नेर्ल निमोहायक्य दिय हुर
 केम मिलेह बाहुयामिब सि येदि ।
 (पृ० १ अ० ८ पं० ६)

२५—कस्य न निमोहायक्य कस्य अन्त —
 ते निमोहि न कस्य अन्त इमि
 कस्य इह अन्त कस्य अन्त
 परिवर्तित कस्य अन्त
 कस्य अन्त कस्य अन्त न अन्त न
 इमि न अन्त अन्त
 न अन्त अन्त अन्त अन्त
 अन्त सि येदि

(पृ० १ अ० ८ पं० ७)

यह भी मोह-रहित व्यक्तियों का आश्रय-स्थल रहा है। यह हितकारी है, सुखकारी है, क्षेमकर है, निःश्रेयस है और अनुगामी है—पर जन्म में भी क्षम फल देनेवाला है। ऐसा मैं कहता हूँ।

२४—असि भिक्षु को ऐसा हो कि मैं इस का गान हो गया हूँ, अनुक्रम से के लिए इस शरीर को परिष्कृत करने में हूँ, यह तुम्हें को विचारें। वहाँ उस शरीर का, योग का, ईश्वर का प्रत्याभ्यास करें।

सत्यवादी, ओजस्वी, दुर्धीर्भ मरण को अपनायें। निश्चय ही यह मरण भी निःश्रेयस है और अनुगामी है—पर जन्म में भी क्षम फल देनेवाला है। ऐसा मैं हूँ।

२५—मिष्ट अथवा मिष्टुनी असनादिक का
 करते हुए लेने के लिए उस आश्रम की बाईं
 से दाहिने गाल की ओर न ले जाये, और न के
 लिए दक्षिण गाल से बाईं गाल की ओर ले ।
 न लेने से प्राप्त होती है। यप भी प्राप्त होता
 है। न जो कहा है, उसी से , सर्व
 से को जानते हुए रहे ।

२६—जो मिष्ट अनेकक हो उसी यदि ऐसा हो कि न
 का को यह । हूँ, शीत स्पर्श को सह

कर्मकाण्ड आदिपाराशर्य श्रीमहा
 आदिपाराशर्य वेङ्कटेश आदिपारा-
 शर्य दत्तमहाशय आदिपाराशर्य
 कर्मोदे कर्मोदे त्रिकुलकर्म पञ्च
 आदिपाराशर्य विदितकर्मकाण्ड
 कर्मोदे श्रीमहाशय आदिपाराशर्य
 कर्मोदे कर्मोदे कर्मोदे आदिपारा

२०—आहुता कृतं पराजितं पुनो भवेत्
 तन्मन्त्राणां पुनरिति सौमिकानां पुनरिति
 हेतुनासां पुनरिति दक्षप्रधानाणां
 पुनरिति पत्न्यदेवतादेवता विद्वज्जने
 पश्ये न विद्वज्जने

हैं। ताप-स्पर्श को सह हैं। दश-स्पर्श को सह हैं। तथा अन्य भी अनुकूल प्रतिकूल स्पर्श सह सका है। पर नष्ट रहने का परिणह नहीं सहन कर सका। तो उसे कष्ट-वधन धारण करना कल्पता है।

२७—अथवा को पीत सकता हो तो अवल ही है। उस रहते हुए पुन-स्पर्श, शीत-स्पर्श, तेज-स्पर्श, दस-भक्त-तथा ऐसे ही विविध के कर्त-आ धेरें—तो उन्हें सहन करे।

अयेते कायमिष जाम्बवामाये तवे
 ते जमिषमया क्व यवाः जमेव
 जाम्बवा पयैर्ज्व जमेव जमिषमिष्वा
 सम्बन्धो सम्बन्धाय सम्बन्धमेव
 सम्मिषामिषा

(सु० १ अ० ८ व० ७)

२८—ये निमह विदि कयेदि परिपुष्टिय
 पापकलयेदि वत्स व वो क
 यवाः—यजम यज
 ते जयेसमिषाः यवाः जाद्वज ।
 यदापरिपुष्टियाः यत्वाः
 यादिया वो योद्वज वो योपरचाः

इससे प्राप्ति होती है और तप भी प्राप्ति
होता है। मैं जो कह रहा हूँ, उसे ही
सर्व से जानते हुए रहें।

२८—जो मित्र तीन वस्त्र और चतुर्थ पात्र से
है, उसके ऐसा विचार नहीं होता कि मैं चतुर्थ वस्त्र की
कई मा।

यह मित्र अपनी वस्त्र की याचना करे।

मित्र मिले हों कैसे ही वस्त्र करे। वस्त्र न
हूँ और रंग हूँ वस्त्रों को न करे। प्रामाण्य

जाते हुए गोपन न करते हुए आप वसधारी हो। नियम
ही यह वसधारी की सामग्री—उत्तम आचार है।

२५—अनन्तर ऐसा जानकर कि हेमन्त ऋतु बीत
गई है, ग्रीष्म ऋतु आ गई है, मित्र परिजनों वहाँ को
पराह है, अथवा पास ही रहे, अथवा दूर रहे, अथवा एक
साठिक ही जाय, अथवा अकेलक हो जाय।

इस तरह जायकता होती है, तप होता है।

यह जो सब मन्त्रान ने कहा है उसे ही जानकर
सर्वतः सर्व प्रकार से समग्र्य को जाने।

१०—हे मेरे छत्रपुत्रसदृश वरदपुत्रसदृश
वा वरद वा राजा वा कछुआ वा
कछुआ वा राजा वा कछुआ वा
पारसुम वा जो पारसुम वा
पारसुम वा जो पारसुम वा
नर नारायणसदृश हि मेरे ।

३१—कुल के कानिष्ठा अथवा वा
 दान वास्तुस्थान वा कानिष्ठा नी
 कानिष्ठा कुनिष्ठा नी कुनिष्ठा पत्र
 निष्ठा निष्ठास्थान निष्ठा अथवा
 कोष्ठेयानि अथवा अथवा अथवा
 वास्तुस्थान वा निष्ठास्थान वा अथवा

३०—मैं हूँ—मुनि गिह अथवा असमनोह
असयति को , पान, , पक्ष, शी
और पादपुष्प न दे, न उनके लिए उसे निमन्त्रित करे
और न परम से सम्पत्ती देयावृत्त करे ।

३१—यह भी श्रुत जानी— , पान, ,
, प्रसिद्ध अथवा पादपुष्प मिष्टा हो या न मिष्टा
हो, मीठा हो या न मीठा हो, पक्ष को छोड़ कर जानि से
धर्म को मारने असयति मुनि जाते

वेदावस्थि पर आवाहयमाने
ति येति (कु० १ अ० ८ व० १)

३१—ये अग्न्याग्ने अग्न्याग्ने अग्न्याग्ने
वा वाग्ने वा वाग्ने वा वाग्ने वा
वाग्ने वा वाग्ने वा वाग्ने वा
वाग्ने वा वाग्ने वा वाग्ने वा
वाग्ने वा वाग्ने वा वाग्ने वा
वाग्ने वा वाग्ने वा वाग्ने वा
वाग्ने वा वाग्ने वा वाग्ने वा
वाग्ने वा वाग्ने वा वाग्ने वा

३२—अग्न्याग्ने अग्न्याग्ने अग्न्याग्ने
(३) वाग्ने वा (४) वाग्ने वा
वाग्ने वा वाग्ने वा वाग्ने वा
वाग्ने वा वाग्ने वा वाग्ने वा
वाग्ने वा वाग्ने वा वाग्ने वा

(कु० १ अ० ८ व० १)

या अतो दे या देने के लिए निमन्त्रित करे
अथवा वैवाक्य करे तो उसे स्वीकार न करे ।

३२—समनोक्त मुनि असमनोक्त को , पान,
सा , न दे न देने के लिए निमन्त्रित करे और
से उसकी वैवाक्य करे ।

३३—समनोक्त मुनि समनोक्त मुनि को , पान,
, , पात्र प्रसिग्रह और पादपुञ्ज
देने के लिए निमन्त्रित करे और परम भाव से
उसकी वैवाक्य करे ।

३४—ये निम्न पञ्चमिषा वा विट्मिषा
 वा निम्बीमिषा वा कुन्दिमिषा वा मुसायमिषा
 वा कुमागामिषा वा गिरिगुमिषा वा कल-
 म्बुमिषा वा कुमागाममिषा वा कुम्भा वा
 कर्हिमि विह्वला वा निम्बु कलकमिषु
 गन्धानि ब्रूयात्तामसोऽसम्भवा । अहं कलुषं
 अहं कलुषं वा पापं वा कलुषं वा कलुषं
 वा कलुषं वा पवित्रं वा कलुषं वा पाप-
 पुत्रं वा पापं वा ब्रूयात् कलुषं वा कलुषं
 समारम्भं समुत्तिष्ठतीति पापिष्यन् अन्विष्यन्
 अन्विष्यन् अन्विष्यन् अन्विष्यन् अन्विष्यन्
 वा समुत्तिष्ठतीति ये ब्रूयन् वरन् ।
 आत्मस्योऽसम्भवा । निम्बु वा गन्धर्वः सम्यक्

३४— मैं, कुन्दागार में, गिरि- में, वृक्ष के
 मूल में, कुम्हार के आश्रय में अथवा कहीं
 साधना करते हुए, बैठते, विवशति होते या विहरीते हुए
 भिक्षु के समीप कोई गाथापठि कहे आशुष्मान्
 । मैं आपके लिए प्राणी, मृद, जीव और सत्त्वों का
 म कर , पान, , दान, प्रविष्टि,
 कंवल अथवा पादपीठन या आपके लिए लरीट-
 क, अथवा उधार ८, अथवा दूसरे से छीनकर,
 अथवा दूसरे की अनुमति बिना लेकर अथवा कहीं से
 आपकी देता हूँ अथवा आपके लिए
 पिनासा हूँ, अन्य इन्हें योगों और इसमें रहें तो
 है आशुष्मान् भगवन् । वह भिक्षु उस समान
 गाथापठिसे कहे

सबस पहियाएँ बाइसो । गाहाई
 जो कल्लु से बन्न बाइसि जो कल्लु से बन्न
 परिआवलि जो हुन बन्न बाइसि बन्न बा
 (४) कल्लु बा (४) पावड बा (४)
 समारम्भ समुत्तिस्स कीव पाविण्ण अन्निज्ज
 अन्निकु अन्निकु बाइसि केवलि आबस
 बा समुत्तिस्सि । से विरथो बाइसो
 गाहाई । एवत्त अन्निकु

२१—से निक्खु पराजित्त बा बाव
 दुरथा बा कर्दिनि विदवान् व निक्खु
 एवत्तमिदु गाहाई आवावाव वेदाए अन्न
 बा (४) कल्लु बा (४) बाव बाइसि केव
 आबस बा समुत्तिस्सि निक्खु परिआवे

आयुष्मान् गाथापति । तुमछो मेरे लिए अशन, पान,
 , वस्त्र, प्रतिग्रह, कच्छ, पादपोछन प्राणी, मृत
 जीव, और सत्त्वों का आरम कर करना चाहते हो
 अथवा जरीदकर, अथवा उधार , अथवा दूसरे से
 छीनकर, अथवा दूसरे की अनुमति बिना , अथवा
 कहीं से मेरे यहाँ मुझको देना चाहते हो, अथवा
 धिमाना चाहते हो सो मैं तुम्हारे इन [को]
 नहीं देता, उन्हें स्वीकार नहीं । हे आयुष्मान्
 गाथापति । इन बातों को न करने के लिए ही तो मैं
 विरत हुआ हूँ ।

३५- मैं, शून्य र मैं गिरि-गुहा में, पृथ्वी
 के मूल में, कुम्हार के आयतन में अथवा अन्य कहीं
 साधना करते हुए, रहते, बैठते, विश्रांति लेते या विहर्त
 हुए मित्र को देखकर, आत्मा में विचारकर उसके भोजन
 या रहने के लिए प्राणी, मृत, जीवों और सत्त्वों का आरम

८ ५ मिक्खु आचिञ्जा मइ सम्भायाए
 परवागरयेव जग्गेहि वा सुवा जय कहु
 गाहापई ममज्झाए जसज वा (४) जल वा
 जाय वेयहि जायसइ वा सहुत्तिमाइ ८ ५
 मिक्खु पक्खिहाइ आचमिवा आणमिञ्जा
 जजासेवमाइ ति वेमि

३६—मिक्खुं ५ कहु पुत्त वा कहुत्ता वा
 जे इमे जाणव कवा वा कुवति से इवा इणह
 सणह किणह वइह पवह आहुणह विमुणह
 सहस्रानायेह विण्णज्झुसइ। से फासे बीरो

कर . पान, . कल, प्रतिग्रह, कंवल
 अथवा पादपीकन वनावे अथवा उसके लिए सपेद करे,
 अथवा सघार लावे, अथवा दूसरे से छीनकर अथवा दूसरे
 की अनुमति बिना छेदे, अथवा कहीं से छेदे, अथवा
 उसके लिए चिनाये— रनवाये और उस
 मिष्ट की अपनी बुद्धि से, दूसरे के कहने से अथवा दूसरे
 से चुनकर यह बात मान्य है कि यह गाथापाठि उसके
 लिए वैसा कर रहा है जो वह अच्छी जानकर,
 कर को मना करे—ऐसा या मेरे
 लिए अनैकरीय है—अमीत्य है। ऐसा मैं हूँ।

३६—कोई गाथापाठि मिष्ट से पूरकर अथवा बिना पूरे
 महा अर्ध कर अक्षुण्णदि कनाये और मिष्ट के
 न करने पर क्रोधित हो उसे पीटे, अथवा कहे—
 इसे मारो, पीटो, काटो, उलाहो, फकाओ, दूटो, छीनो,

त च भिक्षु आत्मिण्या नह सम्मद्वार
 परवागद्वेष अन्नेति वा मुवा अर्थ कहु
 गाहावर्ह ममजहुव अरुण वा (४) अरु वा
 आरु वेरति आरुसह वा समुत्तिगाह त च
 भिक्षु परिदेहाव आत्मिण्या आत्मिण्या
 अनासेवमह दि वेमि

२६—भिक्षु च कहु पुह वा अहुह वा
 ते इमे आरुव गवा वा पुसति से हवा हणह
 तणह विरुह रउह पणह आरुणह विरुणह
 सहसापारेह विमरुणह। ते अहे वीरो

पुत्रो अदिवाचय बहुवा आचार्यगोवरमाह्वये
 वक्ष्या वक्ष्येक्षि बहुवा वक्षुधीय गोपरस्य
 अयुय्येष सप्त पक्षिष्वपि आचार्यगुप्ते पुत्रोहि
 एवं वक्षेय । (शु० १ अ० ८ व १)

१०—समिन्तुं सीधकासपरिवेषमायगाय
 वक्ष्यवक्षिता आचार्ये भूमा आचार्यो
 समन्ता । नो कहु वे गामयन्ता कन्नाहवि ।
 आचार्यो आचार्ये । नो कहु वम
 गामयन्ता कन्नाहवि, सीधकास व नो कहु
 अह उवापमि अदिवाचिचय । नो कहु वे
 कम्पद अगनिकाव कन्नाहिव वा पन्नाहिव
 वा काव आचार्यिचय वा पन्नाहिव वा,
 अन्नेवि वा वक्ष्यामी

मार डालो अथवा अनेक तरह से लग करे तो इस तरह
सकट में पका हुआ वह घोर मुनि सब सहन करे अथवा
सर्कपूर्वक अपना आचारणोक्त बतावाये अथवा मौन रह
आत्मगुप्त हो गोचरी की अनुक्रम से बुद्धि करता हुआ
विचरे। ऐसा मुनि मे कहा है।

६७—उस भिक्षु का कठोर जीत से कल्पता वैल
गाथापति कहे—हे आनुष्मान् । कहीं आपकी
इन्द्रिय-विषय तो पीड़ित नहीं कर रहे हैं, तो मुनि कहे :
आनुष्मान् गाथापति । निश्चय ही मुझे ग्राम-विषय नहीं
सत्ताते। जीत के स्पर्श को मैं सहन नहीं कर
मुझे अश्रिकम्य या प्रज्वलित करना नहीं
कल्पता। मैं आज भी नहीं चाप सकता। न अन्य को
कहकर ऐसा कल्पता है।

हुँ बहिवासर बहुवा आचार्योपरमाइने
 वक्षिमा कमवेक्षित बहुवा बह्नुचीय गोवरस
 अणुगुणैय सम पक्षिणैय आचक्षुष्टे कुर्वेति
 एवं पवेइय । (हुं १ अ० ८ व २)

२७—ब भित्तु सीवकाअपरिवेवमानगाय
 कवसकविता गाहापई पूवा आचक्षुष्टो
 समजा । नो कहु मे गायकन्ता कन्नाइति ।
 आचक्षुष्टो गाहापई । नो कहु मम
 गायकन्ता कन्नाइति, सीवकाअ व नो कहु
 अह सचायमि बहिवासिचय । नो कहु मे
 कम्प अन्निकाय कन्नाकिचय वा पन्नाकिचय
 वा काम आचाविचय वा कवाविचय वा,
 अन्नेसि वा कवनायो

मार कालो अथवा अनेक तरह से तना करे तो इस तरह

में पड़ा हुआ वह धीरे मुनि सब सहन करे अथवा
तर्कपूर्वक अपना आचारगोचर बतलावे अथवा नीन रहे
आत्मगुह हो गोचरो को अनुक्रम से बुद्धि हुआ
विधरे । ऐसा मुनि ने कहा है ।

३०—उस मित्र का शरीर शीत से कपित दैत
गाथापति कहे—हे आधुमान् । कहीं आपको
इन्द्रिय-दि तो पीक्षित नहीं कर रहे हैं, तो मुनि कहे
आधुमान् गाथापति । मित्रय हो मुझे ग्राम-विषय नहीं
सताते । शीत के स्पर्श को मैं सहन नहीं कर स
मुझे आश्रित्य या प्रयत्नित नहीं

। मैं आज भी नहीं तप । न अन्य को
कहकर पैदा करना । है ।

सिधा स एव पञ्चस्य परो अग्निकाय
 कञ्चाक्षिवा पञ्चाक्षिवा काय आवाचिञ्च
 वा पचादिञ्च वा स न निम्बू पछिडेहाय
 आगमिवा आचदिञ्च आवासेववाय
 सि मेवि

(सू० १ अ० ८ सू० ३)

३८—अस्य न निम्बुस्त एव भवत् ओ
 कञ्चो अहमसि आकमहमसि निश्चरदमय
 मिन्वाचरिन् यन्वाय से एव पञ्चस्य परो
 अग्निरह अस्य वा (४) आहदु पछिञ्च
 से पुन्वायेव आकमेव आकरो। ओ

कदाचित् मुनि के ऐसा कहने पर वह गायापति
 अभिप्राय उपलब्ध कर प्रत्यक्ष कर, उसके शरीर
 को आसापित कर, प्रसापित करे तो भिद् यह कहे—
 अभि-सेवन मेरे लिए अकरुण्य है। ऐसा मैं कहता हूँ।

३५—यदि भिद् के मन में ऐसा हो कि मैं संकट में
 आ पका हूँ, निर्बल हूँ और घर-घर भिदा-
 यर्षा करने में आँ हूँ और उसे ऐसा करते चुनकर
 कोई , पान, सात्व, देना चाहे तो
 वह भिद् पढ़े ही कहे—आयुष्मान् गायापति । मेरे लिए

कलु मे कलु कलिलु कलु बा (४)

कुलु बा कलु बा कलु बा कलु बा

(कु० १ अ० ८ व० २)

२१—कलुमेन विधीयते,

कलु मे कलु कलिलु ।

कलुमेन कलुमेन,

कलु कलु कलिलु ॥

२२—कुलिलु विधीयते,

कुलु कलु कलिलु कलिलु ।

कलुमेन कलुमेन,

कलु कलु कलिलु ॥

सम्पुत हुआ आदि अथवा कोई पदार्थ
या पीना नहीं करेगा ।

३९—सयमी, और चौर पुरुष अनुपूर्वी से
(हुआ) समी अनुपम धार्मिक मरणों को
जान, मोह रहित मरणों में से (शक्ति अनुसार)
एक को (समझी करे) ।

४०—धर्म के पाणामी युद्ध पुरुष प और
अपक्षित मरणों को , यथा क्रम से
का करते हुए, के को आत्मी
से निवृत्त हैं ।

४१—कस्याप कस्य किञ्चा,
 कथाहारे विविक्कय ।
 क्व विक्क विक्कान्धा,
 क्वाहारेण कथिर्ध ॥

४२—कीणि नायिककान्धा,
 कएव कोणि कणय ।
 क्खणोऽपि न कथिक्कान्धा,
 कीणि कएव क्वा ॥

४३—जम्मावो निक्कएवेही,
 जमादियुपाकय ।
 जवो वदि निक्कियक्क,
 जम्माव सुदयेसय ॥

४१—वह कपायों की प्रतनु—वीण कर अस्पाहार
हुआ रहे तथा चित्तिय भाव रखे। जब भिक्षु
गान हो तो वह आहार के समोप न —ससका
सर्पया कर दे।

४२—वह जीने की त्या न करे और न मरने
की ही प्रार्थना—कामना—करे। वह जीवन और
मौनी में ही न हो।

४३—वह में स्थित हो, निर्जरा की अपेक्षा
हुआ समाधि का करे। सम्प्रसार और
का कर वह विद्वद अग्र्यात्म का
अन्वेष्टा करे।

४४—ज किमुकनयन जाने,
 जाऊ केयरसमन्नी ।
 उसेव अनवरदाय,
 किमिनिहान्यवन्किद ॥

४५—गामे वा कदुवा दन्ने,
 बडिई पडिडेहिवा ।
 अन्पयान हु विन्नाय,
 कनख खरे कुनी ॥

४६—कनाहारी दुबडिवा,
 पुओ कनखदिवाखय ।
 मादने कनखरे,
 बाकुनेदि विपुल ॥

४४—यदि उसे अपने आशु-क्षेम में किन्ति भी
 मालूम दे तो उसके में पण्डित साधक
 हो मरु पछिया आदि को करे ।

४५-४६—ग्राम लक्ष्मी में सुनि का
 प्रतिनिधित्व कर प्रणि-पटित अगह खान सुनि दून विद्यादि ।
 , का कर लगी पर कर, यहाँ परिपहों
 से स्पूट होने पर छह कर और मातृपिक ॥
 से स्पूट होने पर मर्यादा का न करे ।

४३—ससम्पत्ता व मे वाचा,
 मे व कृष्णहृत्पदा ।
 कुल वि मलयोनिव,
 म कृते व कृष्णहृत्पदा ॥

४४—वाचा के विदितवि,
 हावाधो वधि कृष्णमे ।
 वाचवेदि विविरोहि
 विष्णुवाचोऽदिवाच ॥

४५—कृष्णे विविरोहि,
 वाच ॥
 कृष्णहृत्पदा के,
 वविष्णु विष्णुवाचो ॥

४७—सरीसृप, अन्यत्र अथ चर प्राणी
मांस को नोचे अथवा शीमिद का पान करें, तो उनकी
न मारे और न उन्हें दूर करें।

४८—जीव जन्तु देह को विहा करके हों, तब भी
मृगि उस से न जाये। विहा आदि
आ से दूर दृष्ट से कहीं को करे।

४९— और प्रक्रिया से दूर रह कर
समाधिपूर्ण आशुष्य को पूरा करे। गीतार्थ सयमी के
लिपि यह इति है।

१०—जब से जवरे बन्यो,
 बाबुघोष बाहर ।
 जावबजब पड़ीबाद,
 बिजबदिग्धा सिद्ध सिद्ध ॥

११—हरिधनु न बिजबिजग्धा,
 बगिछा दुनिया बर ।
 बिजोदिग्धा बजाहारो,
 सुओ कलजदियाछर ॥

१२—इन्द्रियि विजबवतो,
 बगिर्ब बाहरे दुनी ।
 जवनि से जवदिह,
 जवने से जवदिह ॥

५०—ज्ञानपुत्र के द्वारा अच्छी तरह गया
दूसरा इगित मरण धर्म है, इसमें खुद को छीक से
प्रतिभार—सेवा—कराने का प्रयोग से त्याग करे।

५१—मुनि हरित—स्वर्गदियुक्त मुनि—आदि पर ॥
सोवे। मुनि को प्राप्त कर सोवे। शरीर की
व्युत्पत्ति कर करे। यह उपसर्गों से स्पष्ट होने
पर करे।

५२—(निजहृद के) इन्द्रियों के
होने पर मुनि विव के " " को रखे। इगित मरण में
अपने में अकल आदि हुआ वह निन्द्य
नहीं होता, यदि वह भावना में और समाहित
होता है।

१३—अधिकारी पण्डित,
 सङ्कट पसार ।
 कायसाधारण,
 इत्येवमिह अभिप्रायः ॥

१४—अधिकारी पण्डित,
 जगत् विद्वत् जगत् ।
 उक्तं न पण्डितैः,
 विद्वत्तया न जगत् ॥

१५—आचार्यदेविक जगत्,
 इत्येवमिह अभिप्रायः ।
 कोट्यन्तं स्यात्तथा,
 विद्वत्तया न जगत् ॥

५३—इणित मरण में मुनि काया को स
के लिए करे, टहले, अंगीपाओं की सकुचित
करे, प्रसारित करे, अथवा इसमें भी अवैतन अवयव
निश्चल रहे।

५४—परि होने पर वह टहले, अथवा यथावत्
बढ़ा रहे। यदि लका रहने से परिजन्ता हो, तो वह
में पुन बैठे।

५५—अनुपम मरण में आसीन मुनि इन्द्रियों की
से हटाने, धुन वाले पाटे के प्राद होने पर अन्य
जीव रहित पाटे की गलेमण करे।

११—अथो बन्ध सङ्गुप्यते,
 न तत्र अयत्नम् ।
 तत्र कस्यदे ज्ञानम्,
 कस्यदे अत्यद्विवाचम् ॥

१२—अथ बाधकतरे विना,
 को एवमुपास्य ।
 सङ्गमायमिरोद्देशि,
 अज्ञानो यदि कस्यदे ॥

१३—अथ के कस्यदे बन्धे,
 पुनश्चाप्यस्य कस्यदे ।
 अग्निर पक्षिरोद्दिवा,
 विहरे विह गच्छते ॥

५६—जिससे पाप की उत्पत्ति हो, उसका अवलम्बन न करे। पाप कार्यों से बच अपनी का " करे। परिच्छेदों से स्पृष्ट होने पर उन्हें सहन करे।

५७—जब अग्नी जानेवाला पादोपगमन इगित मरण से भी सफ़र है। जो पालन है, वह सारे अज्ञों के जंकड़ जाने पर भी अपने स्थान से किंचित् मात्र भी नहीं ।।

५८—यह आत्मवर्म पादोपगमन पूर्व कथित मरणों से भी विरोध रूप से है। प्राप्तुक भुमि को देख महान—मुनि, वहीं वह पादोपगमन मरण का पालन करे।

५६—अभिषेकं तु समासम्,
 हाकर कालं कल्पम् ।
 दोसिरे सम्बन्धो कालः,
 न ते दोरे परीक्षा ॥

५७—वाचनीय परीक्षा,
 कल्पस्या इति सद्वृत्त्या ।
 काले दोरे वेदाय,
 न कल्पेऽपि वाक्य ॥

५८—वेदेषु न रक्षिता,
 कल्पे कुर्यादपि ।
 इत्या कोश न लेखिता,
 कल्पे कुर्यादपि ॥

५९—अचित स्थान को वहाँ अपने आपको
स्थित करें। को व्युत्सर्ग करें और परिपक्व
के आने पर सोचें : मेरे शरीर में परीपह नहीं है।

६०—जब तक यह जीवन है तब तक ये परीपह
और व्युत्सर्ग हैं, ऐसा जानकर देहभेद के लिए संयुत,
उनको ही सहन करें।

६१—यह नश्यत विपुल काममोषी में रंजित
न हो। प्रथम—मोक्ष—की ओर दृष्टि रख, यह
और लोभ का सेवन न करें।

१२—साधपहि निमतिव्या,
 दिव्याय न सदे ।
 व पवित्रक मारुते
 सन्म मूल विद्विषा ॥

१३—सम्पदोई जगुधिप,
 जासकाकस्य पारय ।
 विविक्त परन मन्ना,
 विमोहन्मर्त दिव ॥
 विवेकि ॥

६२—कौई जीवनपर्यन्त नहीं नाश होनेवाले शा
 ऐश्वर्य के लिए निमंत्रित करे, तो भी मुनि उस देव माया
 में तिष्ठ न करे। हे माह्व ! जे अच्छी तरह
 । , सब का त्याग कर ।

६३—सर्व इन्द्रिय विषयों में मूर्छित न होता हुआ,
 वह ज्ञानुष्य को पूर्ण करे । तितिक्षा को परम धर्म
 मोह रहित मरणों में से किसी एक को
 हितकर है । ऐश में कहता है ।

